लोकोदय विज्ञान-माला

वायुयान

[वायुगतिकी, वैमानिकी और वायुयान का सरल परिचय]

कांति सक्सेना

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

युनेस्को के सहयोग से प्रकाशित
प्रथम संस्करण, मार्च १९५९

मूल्य दो रुपये

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं
द्वारका नाथ भार्गव द्वारा भार्गव प्रेस, इलाहाबाद में मुद्रित।

क्रम

———

इस पुस्तक-माला का मूल उद्देश्य पाठकों को विज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति के विभिन्न अंग-उपांगों की सरल और सुबोध शैली में जानकारी देना है। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर अलग-अलग पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं।
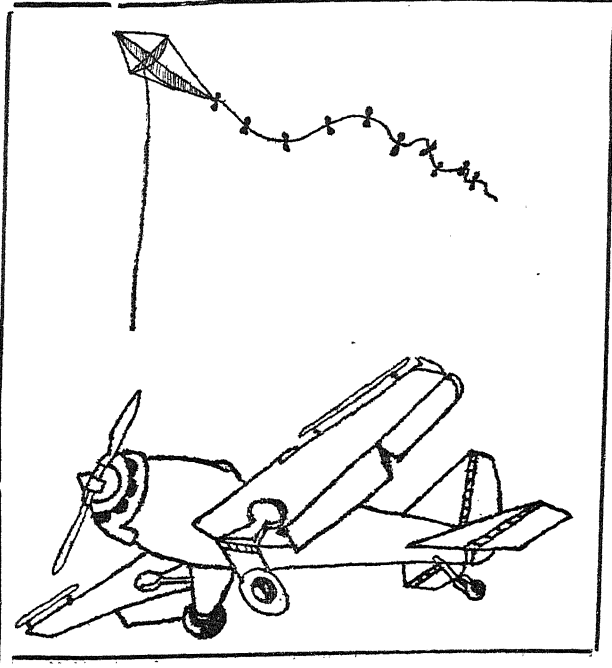
पतंग से वायुयान तक पहुँचने में मनुष्य ने वायुगतिकी और वैमानिकी तक की बहुत बड़ी मंजिल अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़े समय में पार की है। इस मंजिल के ज्ञान ने ही आदमी के लिए हवा में उड़ना सम्भव किया और आज इस ज्ञान की ही बदौलत अन्तरिक्ष-यात्रा और ब्रह्मांड के अन्य ग्रहों पर पहुँचने का स्वप्न यथार्थ होने जा रहा है।

१. उड़ने की कल्पना

दूसरे कई आधुनिक आविष्कारों की भाँति वायुयान अथवा हवाई जहाज भी इस बीसवीं सदी की वैज्ञानिक प्रगति की ही देन है। १६०३ में पहला यंत्रचालित वायुयान सफलता से आकाश में उड़ाया गया। परन्तु उड़ने की कल्पना और प्रयत्न तो मनुष्य बहुत पहले से करता रहा।

जहाँ तक उड़ने की कल्पना का सम्बन्ध है, वह तो मनुष्य आदिकाल से ही करता रहा है। पक्षियों को मुक्त गगन के विस्तार में पंख फैलाकर उड़ते देख आदिमानव के मन में भी उसी की भाँति आकाश में उड़ने की अभिलाषा प्रादुर्भूत हुई होगी। उसके बाद की पीढ़ियाँ उस कल्पना को ही नहीं, उसके लिए किये जानेवाले प्रयत्नों को भी निरन्तर विकसित करती रही हैं।

शरीर उड़ सके चाहे न उड़ सके, परन्तु आदमी का मन तो उड़ता ही रहता है; इसलिए यह कथन उचित ही होगा कि मनुष्य के शरीर के उड़ने से पहले भी उसका मन उड़ता रहा है। सभी देशों की सभी जातियों के साहित्य, पुराण, कथाएँ और काव्य इस बात के साक्षी हैं।

भारतवर्ष के वैदिक साहित्य से लेकर पुराणों, उपनिषदों, जातकों, लोक-कथाओं और प्राचीन लिखित वाङ्मय में भी

मनुष्य के उड़ सकने की कल्पना की गई है।

भगवान विष्णु के वाहन के रूप में गरुड़ की कल्पना की गई है, जो उड़कर विष्णु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर निमिष-भर में पहुँचा दिया करता था। इन्द्र की अप्सराओं के पक्षियों-जैसे पंख होते थे, जिनकी सहायता से वे आकाश में उड़ती रहती थीं। इन परों को उतारकर रखा और पहना भी जा सकता था। देवता, यक्ष और किन्नर विमानों में बैठकर आकाश की सैर किया करते थे। भगवान रामचन्द्र के पुष्पक विमान में बैठकर लंका से अयोध्या लौटने का वर्णन किया गया है। कुछ ऐसे योगियों और यतियों की कल्पना भी की गई है जो बिना पंखों और बिना विमानों की सहायता से आकाश-मार्ग में इच्छा-नुसार विचरण कर सकते थे। नारद ऐसे ही योगी थे और वह हमेशा आकाश-मार्ग से ही आना-जाना पसन्द करते थे। अंगद और हनुमान भी आकाश-मार्ग से ही लंका गये थे। महाभारत में कई वीरों के आकाश में उड़ने और वहाँ युद्ध करने की बात कही गई है। हिडिम्बा नामक राक्षसी तो भीम-जैसे बली को भी अपने साथ उड़ाकर विहार के लिए ले जाया करती थी। स्वर्ग से पुण्यात्माओं के लिए विमान आने और उन्हें सशरीर स्वर्ग ले जाने के अनेक प्रसंग धार्मिक कथाओं में कल्पित किये गये हैं।

कई लोगों का तो यहाँ तक दावा है कि प्राचीन काल में भारतीयों को उड्डयन का समुचित ज्ञान था और आकाश में उड़ने-वाले विमानों का सफलता से निर्माण और प्रयोग किया जाता था। वेद के कुछ मंत्रों में विमान-रचना का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विव-रण मिलता है। 'भोज-प्रबन्ध' नामक ग्रन्थ में पारद के घड़ों से विमान को उड़ाने की बात कही गई है। भारतीय योगियों में

प्रचलित खेचरी नामक एक मुद्रा का लिखित विवरण भी प्राप्त है, जिसको साध लेने पर व्यक्ति हवा से हलका होकर आकाश में स्वेच्छापूर्वक विचरण कर सकता है। पंचतंत्र की उस कहानी को तो कई लोग जानते हैं, जिसमें कबूतर बहेलियों का पूरा जाल ही उड़ा ले गये थे!

उड़ने के इस तरह के प्रसंगों का उल्लेख केवल भारतीय वाङ्मय की ही विशेषता हो, ऐसी बात नहीं है। प्रायः सभी देशों के धार्मिक और पौराणिक साहित्य में, न केवल मनुष्यों अपितु पशुओं के भी उड़ने के उल्लेख उपलब्ध है। बाइबिल के अनुसार इज़राईल के फरिश्ते हमेशा उड़ते ही रहते थे। उनके कन्धों पर पंख जो होते थे! मिश्र में पंखवाले अनेक देवताओं की कल्पना की गई है। वहाँ के ऐसे पुरातन चित्र भी मिले हैं जिनमें घोड़ों और बैलों के पंख लगे हुए हैं। प्रायः सभी देशों की लोक-कथाओं में उड़नेवाले जूतों, उड़नखटोलों, उड़न्तू दरियों, उड़नेवाले लकड़ी के तथा सजीव घोड़ों और झाड़ुओं तक पर बैठकर उड़ने के किस्से मिलते हैं।

चीन में तो एक पुरातन कथा के अनुसार, सम्राट् चेंग तांग के शासन

की-कुंग-शी का उड़नेवाला रथ

काल में, (१८०० ई० पू०) की-कुंग-शी नामक किसी व्यक्ति ने एक ऐसा रथ बनाया था, जो हवा में अपने-आप उड़ सकता था। कहा जाता है कि वहीं के एक दूसरे सम्राट् शुन ने (ई० पू० २२५८-२२०८) पक्षियों की तरह उड़नेवाला एक यंत्र ही नहीं बनाया था, सरकंडों की बनी बड़ी टोप के सहारे आधुनिक छत्री-सैनिकों की भाँति हवाई-कुदान भी लगाई थीं। और पतंग तो विश्व को चीन की ही देन है।
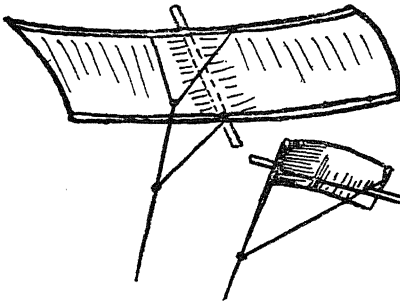
चीनी पतंग

तात्पर्य यह कि आदमी हमेशा से उड़ने के मनसूबे करता रहा और उड्डयन के के भौतिक उपकरणों का विकास न कर पाने के कारण काल्पनिक उड़ानों का आनन्द लेता रहा—कल्पना में उड्डयन के उपकरणों की सृष्टि में संलग्न रहा।

और मनुष्य की कई हजार वर्षों की कल्पनाएँ एक दिन भौतिक उपकरणों को भी बनाने में सफल हुईं और वह हवा में ही नहीं, हवा के परे के क्षेत्र में भी उड़ने और उड़न के भौतिक उपकरणों को भेजने में सफल हो गया।

१. प्रारम्भिक प्रयत्न

मनुष्य ने पक्षियों को पंख फड़फड़ाकर उड़ते देखा, इसलिए उसने भी उन्हीं की भाँति उड़ने के प्रयत्न किये। उड्डयन के इतिहास में नकली पंखों अथवा पंखों-जैसे उपकरणों के द्वारा उड़ने के कई असफल प्रयत्नों का उल्लेख मिलता है। इस तरह का सिलसिला कई शताब्दियों तक चलता रहा।

इंगलैण्ड के एक बादशाह ब्लाडुड (८५२ ई० पू०) के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने आसमान में उड़ने का प्रयत्न किया, लेकिन एपोलिन देवता के मन्दिर पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। यह ब्लाडुड सुप्रसिद्ध राजा लीअर का पिता था।

ग्रीक पुराणों में भी उड़ने के प्रयत्नों का उल्लेख है, जिनमें डेडालुस और इकारस की कहानी अति प्रसिद्ध है। डेडालुस अपने समय का सर्वोत्कृष्ट स्थपति था। क्रेट के राजा माइनोस ने उससे एक भूलभुलैया बनवाई और अन्त में उसी को वहाँ बन्दी करना चाहा। डेडालुस को किसी प्रकार राजा के इरादों का पता चल गया और वह अपने पुत्र के साथ नकली पंखों की मदद से उड़ भागा। इन पंखों को बाप-बेटों ने मोम की सहायता से अपने हाथ-पाँव पर चिपका लिया था। उड़ने से पहले पिता ने पुत्र को सचेत कर दिया था कि वह अधिक ऊँचा न उड़े, नहीं तो सूर्य की गर्मी पाकर मोम पिघल जायेगा।

उड़ने के आनन्द में पुत्र को पिता की सूचना याद न रही। वह ऊँचा और ऊँचा उड़ता गया। गर्मी पाकर मोम पिघल गया, पंख छूट गये और इकारस समुद्र में डूबकर मर गया।

डेडालुस और इकारस की उड़ान

इस तरह की अनेक कथाएँ प्राचीन वाङ्मय में पायी जाती हैं, जिनसे पता चलता है कि मनुष्य ने पक्षियों-जैसे पंखों की सहायता से उड़ने के प्रयत्न किये।

विमान-शास्त्र में आर्कीमिडस का नाम भी उल्लेखनीय है। यह यूनानी वैज्ञानिक लगभग २५० ई० पू० के आस-पास हुआ और इसने एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। आर्कीमिडस के सिद्धान्त को आज भी विमान-शास्त्र और उड्डयन का बुनियादी सिद्धान्त माना जाता है। उसके सिद्धान्त का सार यह है कि किसी भी द्रव में कोई वस्तु डाली जाये तो द्रव का

दबाव ऊपर की ओर बढ़ जाता है और उससे वह वस्तु वजन में कुछ हलकी प्रतीत होने लगती है।

आगे चलकर वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त को हवा पर भी लागू किया और अनेक वर्षों तक इस विश्वास के अनुसार परीक्षण करते रहे। और इसी विश्वास और सिद्धान्त के आधार पर आगे चलकर गुब्बारों से उड़ना सम्भव हो सका।

बहुत वर्षों तक उड्डयन के परीक्षणों का क्रम यह रहा कि उड़ने का इच्छुक व्यक्ति अपने हाथों और पाँवों में पक्षी-जैसे बड़े-बड़े पंख बाँधकर किसी ऊँची मीनार से कूदता था और पंख फड़फड़ाकर हवा में तैरने का प्रयत्न करता था। ११वीं शताब्दी में कुस्तुन्तुनिया में सारासेन नाम के एक व्यक्ति ने ऐसा ही प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सका। उसके पंख और लबादा उसे हवा में रोक न सके। वह गिर पड़ा और मर गया। १०२० ईसवी में इसी तरह का दूसरा प्रयत्न ओलीवर नामक एक अंग्रेज साधु ने किया। वह भी अपने हाथ और पाँव में पंख बाँधकर एक ऊँची मीनार से कूदा और कहते हैं कि एक फर्लाङ्ग तक उड़ता चला गया। लेकिन हवा तेज़ थी इसलिए सँभल न सका; गिर पड़ा और उसके हाथ-पाँव टूट गये। अपनी असफलता का कारण उसने पूँछ का न होना माना। उसने कहा कि "यदि मैंने पक्षियों की भाँति एक दुम भी अपने नितम्बों के लिए बना ली होती तो मजाल नहीं था कि यों अधबीच आ गिरता!"

तेरहवीं शताब्दी तक यूरोप में इसी प्रकार के प्रयत्न होते रहे। उस समय के सुप्रसिद्ध दार्शनिक आर्कीमिडस के सिद्धान्तों की उड्डयन-सम्बन्धी उपयोगिता पर मीमांसा करते रहे।

यह माना जा सकता है कि अंग्रेज वैज्ञानिक रोजर बैकन

सम्भवतः पहला व्यक्ति था, जिसने उड्डयन का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन किया। वह १३वीं शताब्दी में हुआ। उसने पक्षियों के नमूने पर हाथ और पाँव की सहायता से फड़फड़ाये जानेवाले एक उड्डयन-यंत्र का निर्माण भी किया था।

पक्षी का शरीर उड्डयन के अनुकूल बना होता है।

लेकिन मनुष्य पक्षियों की भाँति पंख फड़फड़ाकर कभी उड़ न सका। मनुष्य के लिए ऐसा करना सम्भव भी न था। परीक्षणों और अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया कि आदमी पक्षी की भाँति उड़ नहीं सकता।

पक्षी का शरीर-यंत्र उड्डयन के अनुकूल बना होता है

उसके अवयवों का विश्लेषण करके देखें तो पता चलता है कि उड़ने में सहायता पहुँचानेवाले अवयव और मांस-पेशियों के भार का अनुपात पक्षी के समस्त शरीर का दो-तिहाई या इससे भी अधिक होता है। इसी लिए वह अधिक समय तक और अधिक सक्षम ढंग से पंख फड़फड़ाता रह सकता है। पक्षी की तुलना में मनुष्य के पास ऐसे अवयव नहीं हैं और अपनी प्राकृतिक शारीरिक विशेषता के कारण मनुष्य अधर में अधिक समय तक हाथों-पाँवों को हिलाता-डुलाता नहीं रह सकता।

लेकिन कई वर्षों तक इस सत्य को जाना नहीं जा सका। उड़ने के इच्छुक पक्षियों की ही भाँति उड़ने के प्रयत्न करते रहे। उनके दिमाग़ में यह सत्य कई दिनों तक आ ही नहीं सका कि पंखों को स्थिर करके भी उड़ा जा सकता है।

विमान-शास्त्र में पक्षियों की भाँति उड़ने के प्रयत्नों को 'हवा से भारी उड़ान' की संज्ञा दी गई है। इसका अभिप्राय यह है कि पक्षी अथवा मनुष्य हवा से भारी होते हैं और अपने भार के साथ ही हवा में उड़ने का प्रयत्न करते हैं।

उड्डयन के आरम्भिक इतिहास में इतालवी कलाकार लिओनार्दो दा विंची का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इस प्रतिभाशाली कलाकार और अन्वेषक का जन्म १४५२ ई० में और मृत्यु १५१६ ई० में हुई। अपने ६७ वर्षों के जीवन में इस अकेले व्यक्ति ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये। कला, संगीत, स्थापत्य और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में इसने मानव-जाति को अभूतपूर्व उपहार प्रदान किये। अकेले उड्डयन के सम्बन्ध में इसने अपनी नोंध पोथी में १६० पृष्ठ लिखे और भावी पीढ़ियों के लिए कई उपयोगी रेखांकन छोड़ गया। पैरा-

शूट (हवाई छत्री) और हेलीकाप्टर का आविष्कार भी इसी महान् व्यक्ति ने किया। उसने अपने लेखों में दोनों का सचित्र वर्णन किया है। एक स्थान पर उसने लिखा है कि "किसी भी वस्तु का हवा जितना प्रतिरोध करती है वह वस्तु भी हवा का उतना ही प्रतिरोध करती है।" लिओनार्दो की इस स्थापना का उड्डयन-विज्ञान में बड़ा भारी महत्त्व है। यह इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक विचारक सर आइज़क न्यूटन की इस महत्त्वपूर्ण स्थापना की कि "प्रत्येक क्रिया की ठीक वैसी ही और विपरीत प्रतिक्रिया भी होती है" पूर्व-परिकल्पना है।

लिओनार्दो की हवाई छत्री (पैराशूट) एक चौकोन तम्बू-जैसी थी और उसने उसका नाप-जोख भी लिखा है और बहुत
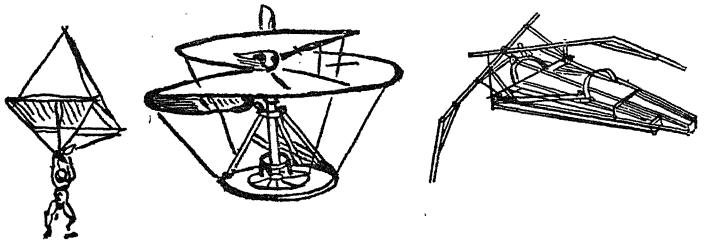
१ २ ३

१. लिओनार्दो दा विंची की हवाई छत्री (पैराशूट)
२. विंची के हेलीकाप्टर का नमूना
३. विंची द्वारा निर्मित एक आर्नीथाप्टर का नमूना

विश्वास के साथ वह कहता है कि "इस छत्री के सहारे आदमी कितनी ही ऊँचाई से निर्भय कूद सकता है।"

विमान में प्रापेलर या नोदक (इसका समुचित वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा) के सिद्धान्त का आविष्कारक भी लिओनार्दो ही है। हेलीकाप्टर के उसके नमूने का रेखाचित्र तो बहुत

ही श्लाघनीय है। उसने मनुष्य द्वारा चलाये जा सकनेवाले दो विभिन्न प्रकार के आर्नीथाप्टर का रेखांकन भी किया था। एक प्रकार के आर्नीथाप्टर में आदमी लकड़ी के एक ढाँचे पर लेटकर अपने हाथों और पाँवों की सहायता से दो या चार पंखों को पैडलों और गिर्रियों से चला सकता था। दूसरे प्रकार के आर्नीथाप्टर में वह खड़ा-खड़ा ही चमगादड़ की भाँति दो या चार पंखों को कई प्रकार के जटिल पैडलों और गिर्रियों से फड़फड़ा सकता था।
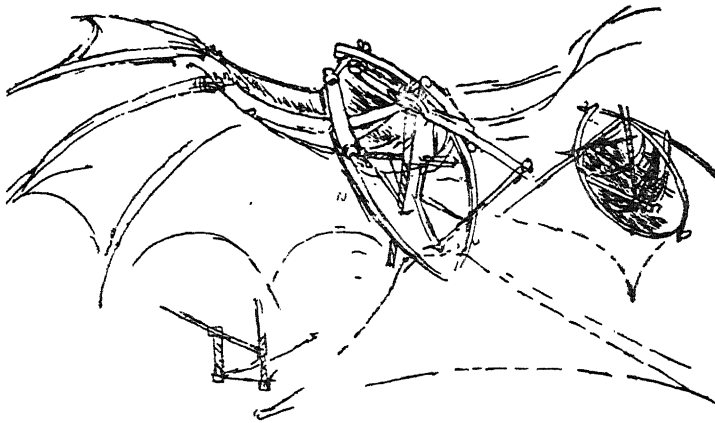
लिओनार्दो दा विंची का बनाया हवाई यंत्र का रेखांकन

लिओनार्दो ने विभिन्न पक्षियों की उड़ानों का भी बड़ी बारीकी से अध्ययन किया था और हवाई सन्तुलन, गुरुत्वाकर्षण और दबाव के सम्बन्ध में उसका ज्ञान आश्चर्यजनक था; परन्तु न जाने क्यों यह तथ्य उसकी समझ में न आ सका कि मनुष्य की पेशियाँ उड़ने के लिए पक्षियों की पेशियों के समान शक्तिशाली और सक्रिय नहीं होतीं और मनुष्य उनकी भाँति उड़ नहीं सकता।

इस सम्बन्ध में जी० ए० बोरेली ने बड़ा उपयोगी कार्य किया। उसने कई वर्षों तक पक्षियों की गति-विधि और उड़ानों का अध्ययन कर १६८० ई० में यह निष्कर्ष निकाला कि आदमी अपने रग-पुट्ठों की सहायता से कृत्रिम पंख लगाकर कभी उड़ नहीं सकता, क्योंकि पक्षियों की मांस-पेशियों की तुलना में मनुष्य की मांस-पेशियों का भार और शक्ति बहुत कम होती है।

बोरेली की इस स्थापना ने मनुष्य को 'हवा से भारी उड़ान' की दिशा से हटाकर 'हवा से हलकी उड़ान' की दिशा की ओर प्रवृत्त करने में बड़ा काम किया। १७वीं शताब्दी के अन्त तक मनुष्य 'हवा से भारी उड़ान' की दिशा में ही प्रयत्न करता रहा। १८वीं शताब्दी से उड्डयन के इतिहास में नये अध्याय का श्रीगणेश होता है।

वैसे आगे चलकर पक्षियों की भाँति पंख फड़-फड़ाकर उड़नेवाले शक्ति चालित यानों और विमानों के नमूनों का निर्माण तो संभव हो सका। नमूनों में फड़फड़ानेवाले यांत्रिक पंख लगाये जा सके और वे नमूने चमगादड़ों की भाँति पंख फट-फटाकर उड़ भी सके। ऐसे विमानों को आर्नीथाप्टर कहते हैं। यह दो यूनानी शब्दों को मिलाकर बनाया गया है। यूनानी भाषा में पक्षी के लिए 'आर्नीस' अथवा 'आर्नीयास' शब्द हैं। और 'प्टर' पंख को कहते हैं। हिन्दी में आर्नीथाप्टर के लिए 'विहग-पंख' का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन इस प्रकार के 'विहग-पंखों' में बैठकर आदमी उड़ नहीं सकता। यांत्रिक पंखों की फड़फड़ाहट के कारण ऐसे यान इतनी बुरी तरह हचकोले खाते और ऊपर-नीचे हिलते-डुलते हैं कि चालक का जीवित रहना प्रायः असम्भव ही है। फिर भी परीक्षण के लिए इस प्रकार के

कुछ छोटे शक्तिचालित ऑर्नीथाप्टर के नमूने बनाये गये।

उड्डयन के आरम्भिक इतिहास में इंग्लैण्ड के एक पादरी जॉन विल्किन्स और उसके मित्र रिचार्ड हुक के नाम और कार्य भी उल्लेखनीय हैं। जान विल्किन्स इंग्लैण्ड की रायल सोसाइटी के संस्थापकों में से था। उसने उड्डयन और विमान-शास्त्र पर कई महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ कीं। मनुष्य के उड़ सकने के तीन सम्भव प्रकारों का सुझाव देते हुए उसने कहा कि मनुष्य (१) नकली पंखों की सहायता से, (२) पक्षियों का उपयोग करके, और (३) नोदक (प्रापेलर) वाले उड़न-रथों के द्वारा पृथ्वी से ऊपर अधर में उड़ सकता है। उसने यह स्थापना भी की कि यदि मनुष्य अपने को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त कर सके तो २० मील की ऊँचाई पर स्वेच्छा से उड़ सकता है।

उसके मित्र रिचार्ड हुक ने १६५५ ई० में स्प्रिंगों और पंखों की सहायता से हवा में टिके रह सकनेवाले एक यंत्र का नमूना बनाया और उड़ने के लिए नक़ली मांस-पेशियाँ बनने का प्रयत्न भी किया। विमान-विद्या के विशेषज्ञों की राय है कि हुक का नमूना हेलीकाप्टर से मिलता-जुलता रहा होगा।

इटली के फ्रान्सेस्को डि लाना-तर्ज़ी का योगदान भी बहुत ही मूल्यवान है। १६७० के लगभग उसने एक ऐसे वायु-पोत का नमूना तैयार किया, जो 'हवा से हलकी उड़ान' के लिए प्रयुक्त किया जा सकता था। उसने अपने वायु-पोत
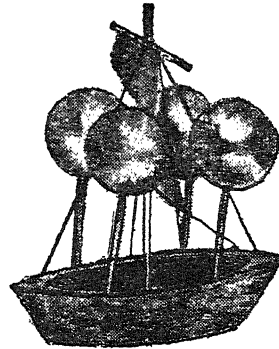
फ्रान्सेस्को का वायुपोत

के चारों कोनों पर ताँबे की पतली चद्दर के चार बड़े-बड़े गोले लगवाये। प्रत्येक गोले का व्यास २० फुट था। उसका विश्वास था कि यदि इन गोलों को निर्वात (हवा से रहित) कर दिया जाये तो वे अपने आस-पास के वातावरण से (वायुमंडलीय दबाव) हलके होकर ऊपर उठने लगेंगे। उसका यह विश्वास सही था। आगे चलकर इसी सिद्धान्त पर गुब्बारों के सहारे उड़ने का प्रयत्न किया गया। इस सिद्धान्त को वायुमंडलीय दाबा और निर्वात का सिद्धान्त कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी वस्तु यदि अपने आस-पास के वायुमंडलीय भार से हलकी की जा सके तो वह अनायास ही ऊपर उठने लगती है।

३. गुब्बारे

विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी इस तथ्य को जानता है कि हवा गरम होकर हलकी हो जाती है और ऊपर को उठने लगती है। गरम हवा के ऊपर उठने की क्रिया में वायुमंडल में रिक्तता (वेकुम = निर्वात अवस्था) उत्पन्न होती है, जिसे भरने के लिए अपेक्षाकृत ठंडी हवा चारों ओर से तेजी से उस तरफ खिंचती है और बड़े वेग से गरम हवा को ऊपर धकेलती है। ऊपर की ओर धकेले जाते ही गरम हवा अपने साथ और भी कई चीजों को उड़ा ले जाती है। अलाव की तेज आँच में लपटों और धुएँ के साथ जले हुए तिनकों और पत्तों और ऐसी ही छोटी वस्तुओं का ऊपर की ओर उड़ते रहना प्रायः सभी का रात-दिन का देखा-जाना है। दो फरान्सिसी बन्धुओं ने भी लपटों में इसी प्रकार जले हुए तिनकों और कागजों को उड़ते देखा और 'गरम हवा' को बन्दी बनाने का निश्चय कर लिया।

उड्डयन के इतिहास में ये दोनों भाई मोंटगोलफियर बन्धु के नाम से जाने जाते हैं। पेशे से ये भाई कागज बनाने का काम करते थे। बड़े का नाम जोसेफ़ (१७४०-१८१०) और छोटे का नाम ईटेन (१७४५-९९) था। जोसेफ़ ने वायु की प्रकृति के सम्बन्ध में गहन अध्ययन किया था और आरम्भ से ही उसकी रुचि उड्डयन की ओर थी। १७७९ में जोसेफ ने ऊँची मीनार

से हवाई छत्री के सहारे एक भेड़ को सुरक्षित उतारने का सफल प्रयोग भी किया था। आगे चलकर दोनों भाइयों ने सम्मिलित रूप से प्रयोग और परीक्षण किये।

गुब्बारे में 'गरम हवा' भरकर उसे सफलतापूर्वक उड़ाने का पहला श्रेय मोंटगोलफियर बन्धुओं को ही है। वैसे गरम हवा के गुब्बारे का प्रथम आविष्कारक तो एक पुर्तगाली पादरी लारेन्सो डी गुज़माओ था। उसने ८ अगस्त १७०९ को पुर्तगाल
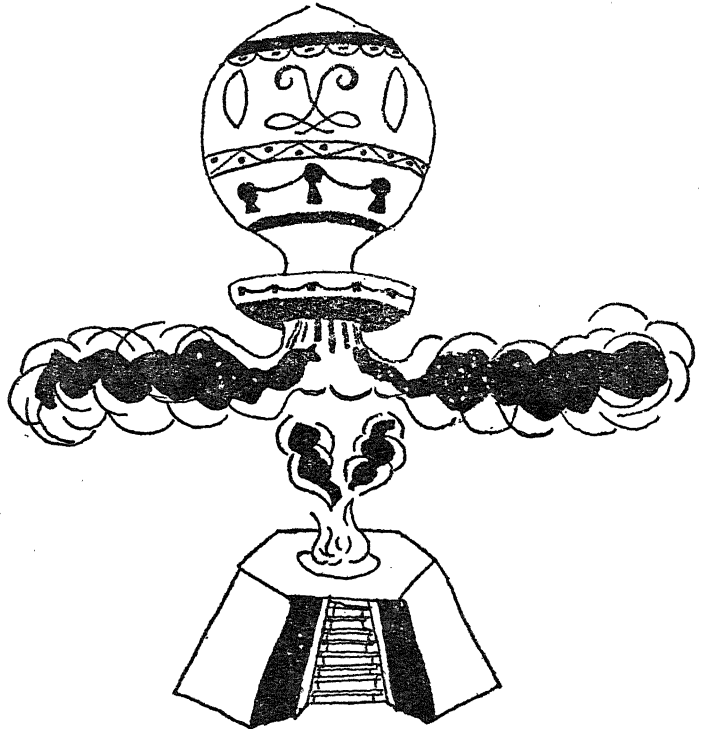
गरम हवा का गुब्बारा

के राजा के सामने एक छोटे-से गुब्बारे में (वास्तव में गुब्बारे के नमूने में) गरम हवा भरकर उसे उड़ाया था। गुज़माओं ने १७०९ में एक हवाई चिड़िया भी बनाई थी, जिसे पुर्तगाली भाषा में

'पासारोला' कहते हैं। लेकिन उसकी वह हवाई चिड़िया कभी उड़ न सकी।

मोंटगोलफियर बधुन्ओं ने गुब्बारे का पहला सफल परीक्षण १५ नवम्बर १७८२ को अपने घर में निजी तौर पर किया। उन्होंने एक हलका रेशमी थैला लिया और उसके नीचे कागज का अलाव जलाया। गरम हवा ने तत्काल थैले को छत तक उठा दिया। उसके बाद उन्होंने कई परीक्षण किये और अन्त में ५ जून १७८३ को पहला बड़ा सार्वजनिक प्रदर्शन कर दिखाया। उनका यह गुब्बारा काफी बड़ा था। इसका व्यास ३८ फुट और भीतर का विस्तार २३,४३० घनफुट था। इसके मुँह में, ऊन और पुआल जलाकर उसकी, गरम हवा भरे जाने पर यह ६००० फुट की ऊँचाई तक उड़ा और हवा ठंडी होने पर अपने उड़ने के स्थान से ७६७८ फुट की दूरी पर जाकर उतरा।

इस समय तक हाईड्रोजन नामक गैस का पता लगाया जा चुका था। यह गैस बहुत ही हलकी होती है। एक अंग्रेज रासायनिक हेनरी कैवेंडिश (१७३१-१८१०) ने १७६६ के लगभग इस गैस का पता लगाया था। उसने इसका नामकरण 'ज्वलनशील हवा' किया था, जिसे १७६० में एक दूसरे वैज्ञानिक लेवोइसीअर ने 'हाईड्रोजन' नाम दिया। हवा इस गैस से लगभग १४ गुना भारी होती है। समुद्र की सतह पर हवा का भार जहाँ प्रति १००० घनफुट ७६ पौण्ड होता है वहीं हाईड्रोजन गैस का भार केवल ५·३ पौण्ड होता है। उतने ही घनफुट में और उसी स्तर पर कोयले की गैस का भार ३६ पौण्ड और हेलियम का १०·५ पौण्ड होता है।

हलकेपन के कारण उड्डयन में हाईड्रोजन की उपयोगिता

का सबसे पहले विचार ग्लासगो विश्वविद्यालय के वनस्पति और रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर डाक्टर जोसेफ ब्लैक (१७२८-९९) के मन में आया। एक थैले में इस गैस को भरकर उसे उड़ाने का परीक्षण भी डाक्टर ब्लैक करना चाहते थे, पर कभी कर न सके। उनकी कल्पना और विचार को स्वतंत्र रूप से मूर्त रूप मिला एक फरान्सिसी वैज्ञानिक जे० ए० सी० चार्ल्स (१७४६-१८२३) के हाथों।

मोंटगोलफियर बन्धुओं के परीक्षण से उत्साहित होकर चार्ल्स महोदय ने गुब्बारे में 'ज्वलनशील हवा' (हाईड्रोजन) को भरने का निश्चय किया। उन्होंने एक गुब्बारा बनाया, जिसका व्यास १३ फुट था। २७ अगस्त को उनका यह गुब्बारा
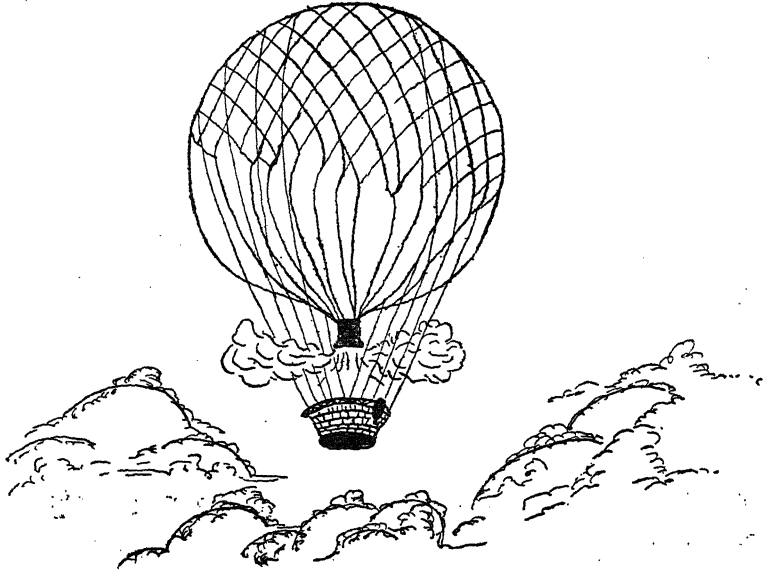
हाईड्रोजन गैस का गुब्बारा

हाईड्रोजन के प्रभाव से उड़ा और १५ मील दूर जाकर उतरा।

अब दोनों तरह के गुब्बारों के परीक्षण होते रहे। १७८३ का वर्ष हवाई उड्डयन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने योग्य है। इसी वर्ष की १५ अक्तूबर को मोंटगोलफियर बन्धुओं ने अपने गरम हवा के गुब्बारे में रोज़ियर नामक एक डाक्टर को ८४ फुट की ऊँचाई तक उड़ाया। डाक्टर रोज़ियर मानव-जाति का पहला उड़ाका था। पहली बार वह ४ मिनट और २४ सेकण्ड तक हवा में रहा। उसके पहले मोंटगोलफियर बन्धु अपने गुब्बारे में एक भेड़, एक मुर्गे और एक बत्तख को भी सफलतापूर्वक उड़ा चुके थे। डाक्टर रोज़ियर उसके बाद दो बार और उड़े। चौथी बार २१ नवम्बर को मोंटगोलफियर बन्धुओं के ही गुब्बारों में वह मार्किस डी आरलैंड्स के साथ उड़े। यह विश्व की पहली ऐतिहासिक गुब्बारा उड़ान थी। इस बार गुब्बारा २५ मिनट तक उड़ता रहा, २८० फुट की ऊँचाई तक चढ़ा और उसने साढ़े पाँच मील का फासला तय किया।

उसी वर्ष पहली दिसम्बर को प्रोफेसर चार्ल्स ने भी अपने हाईड्रोजनवाले गुब्बारे में राबर्ट नामक व्यक्ति के साथ दो घण्टे तक लगभग २७ मील की यात्रा की और सुरक्षित नीचे उतर आये। थोड़ी ही देर बाद वह अकेले पुनः गुब्बारे में उड़े और इस बार ६००० फुट की ऊँचाई तक गये और हवा में लगभग ३३ मिनट तक रहे।

इसके बाद तो गुब्बारों से यात्रा करने का सिलसिला ही चल पड़ा। और गुब्बारे विकसित होते हुए आधुनिक यान्त्रिक क्षमतावाले हवाई पोतों (एअरशिप्स) के स्तर तक पहुँच गये।

लेकिन शीघ्र ही यह देखा गया कि 'गरम हवा वाले' गुब्बारे उतने निरापद नहीं होते, इसलिए हाइड्रोजनवाले गुब्बारों

को प्राथमिकता मिली और हाइड्रोजन के आधार पर ही वायु-पोतों (एअरशिप) का विकास किया गया।

गुब्बारा सामान्यतः एक पतला गोलाकार खोल होता है, जिसमें हवा से हलकी गैस भरी जाती है। खोल प्रायः रबर मिश्रित रेशम, या सूत का बनाया जाता है और जोड़ सरेस से बन्द किये रहते हैं। यह खोल जाली से ढँका रहता है और उसकी रस्सियों से बैठने का झूला लटका दिया जाता है। खोल का मुँह नीचे की ओर होता है। गैस इसी मुँह की राह अन्दर भरी जाती है। हाईड्रोजन गैस यद्यपि सबसे हलकी होती है, परन्तु वह बड़ी ज्वलनशील भी है, हेलियम ज्वलनशील तो नहीं, परन्तु बड़ी महँगी है, इसलिए कोयले की गैस का ही, ज्वलनशील होते हुए भी, सस्तेपन के कारण, अधिक उपयोग किया जाता है। खोल के सिरे पर बीचोबीच एक वाल्व होता है, जो बन्द रहता है और आमतौर पर उतराई के समय ही खोला जाता है। गुब्बारे की उड़ान के लिए आवश्यक है कि उसका कुल भार उसके चारों ओर की हवा के विस्तार-भार से कम रहे। यदि ऐसा न हुआ तो गुब्बारा कभी उड़ न सकेगा। हलका होने पर वह एकदम ऊँचा जायेगा। गैस भरने के तत्काल बाद गुब्बारे का मुँह बाँध दिया जाता है और उसे रोके रखने के लिए बालू के बोरे लटका दिये जाते हैं। गुब्बारे के उड़ते ही उसका मुँह खोल दिया जाता है, क्योंकि ऊँचाई पर जाते ही अन्दर की गैस फैलने लगती है, जो खुले मुँह की राह बाहर निकलती रहती है और खोल को हानि नहीं पहुँचाती। यदि मुँह खुला न रहे तो गैस फैलकर खोल को फोड़ती हुई बाहर निकल आयेगी। मुँह खुला रहने से गुब्बारे

के अन्दर की गैस का दाब बाहर के वायुमंडलीय दाब के सम-कक्ष बना रहता है। जब तक गुब्बारे, उसकी गैस और उसके बोझ का वजन उसके चारों ओर की हवा के विस्तार-भार के समकक्ष नहीं हो जाता वह निरन्तर ऊँचा चढ़ता जायेगा। वजन समकक्ष होते ही सन्तुलन स्थापित हो जाता है। रोके रखने के लिए बालू के जो बोरे लटकाये जाते हैं वे उड़ान आरम्भ करने के साथ ही एक-एक कर हटा दिये जाते हैं। सन्तुलन और स्थिरता स्थापित होने पर यदि और ऊँचा जाना हो तो बालू के बोरे आवश्यकता के अनुसार और भी कम कर दिये जाते हैं यानी नीचे फेंक दिये जाते हैं।

गुब्बारे की उड़ान पूरी तरह हवा के रुख पर निर्भर करती है। नीचे उतरने के लिए सिरेवाले वाल्व को खोल-कर गैस निकाल दी जाता है। आमतौर पर गुब्बारों की उड़ानें रात में ही की जाती हैं, क्योंकि दिन में सूर्य की गर्मी से खोल के अन्दर की गैस तेजी से फैलती है। रात में गुब्बारा-चालक को जहाँ केवल हवा से निपटना होता है, दिन में धूप की तेजी-मन्दी का भी विचार रखना पड़ता है। शक्ति-चालित यांत्रिक वायुयानों के शोर-शरापे के मुकाबले गुब्बारों की शान्त निःशब्द उड़ानें बड़ी ही सुखद होती हैं। यदि धूप और नमी की समता के कारण गैस का परिमाण एक-जैसा बना रहे तो गुब्बारा ऊपर-नीचे नहीं होता और हवा की गति पर उड़ने के आनन्द का उपभोग किया जा सकता है।

गुब्बारों का आविष्कार और विकास तो फ्रान्स में ही हुआ परन्तु शीघ्र ही उनका प्रचलन समस्त यूरोप, इंगलैंड और अमेरिका तक भी हो गया।

१६ जनवरी १७८४ को एक विशालकाय गुब्बारा फ्रान्स के एक नगर लायन्स में उड़ाया गया। इसमें ७ आदमी बैठकर ३००० फुट की ऊँचाई तक उड़े। इसके खोल का विस्तार ५,६०,००० घनफुट था।

उसी वर्ष ४ जून को लायन्स नगर में श्रीमती थिबल नाम की एक महिला फ्लुरैंट नाम के चालक के साथ दो मील तक गुब्बारे में उड़ीं। वह पहली महिला हवाई यात्री थीं।

मोंटगोलफियर बन्धुओं ने गुब्बारे की उड़ान के और भी कई परीक्षण किये।

इंग्लैण्ड में गुब्बारे का प्रयोग १७८३ में आरम्भ हुआ और उसी समय अंग्रेजी भाषा में गुब्बारे के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'बैलून' प्रचलित हुआ। अमेरिका में भी १७८३ में एक तेरह वर्षीय किशोर, एडवर्ड वारेन ने गुब्बारे में उड़कर वहाँ गुब्बारा-उड़ान का श्री गणेश किया।

आदमी ने हवा में उड़ने का आनन्द तो जान लिया, लेकिन यह विचार उसे कष्ट पहुँचाता रहा कि वह गुब्बारे को इच्छानुसार चला नहीं सकता। हवा की गति और लहरों के भरोसे उड़ना मनुष्य को खलता रहा। इस कमी को दूर करने के लिए अन्वेषकों ने गुब्बारों और वायु-पोतों के साथ कई परीक्षण और प्रयोग किये। थोड़े ही समय में वायु-पोतों के साथ तरह-तरह की पालें, पतवारें, पैडल, गिर्रियाँ और पंख भी लगाये गये, जिनसे उसकी गति और उड़ान का इच्छानुसार नियन्त्रण किया जा सके। कुछ लोगों ने हाथ से चलाये जानेवाले नोदक भी लगाये। लेकिन शक्तिचालित इंजिन का आविष्कार अभी नहीं हुआ था, इसलिए इन उपकरणों का वायु-पोतों में सफलतापूर्वक उपयोग नहीं किया

जा सका। लेकिन ग्लाइडरों और वायुयानों में उनके उपयोग का मार्ग प्रशस्त हो गया।

गुब्बारों के नियंत्रण और वायुयानों के विकास की दिशा में सबसे उल्लेखनीय कार्य मेरी म्यूनियर नामक एक फरान्सिसी सैनिक अधिकारी ने किया। वायुपोत के लिए उपयुक्त लम्बोतरा आकार उसी के दिमाग की उपज थी। गुब्बारे के अन्दर
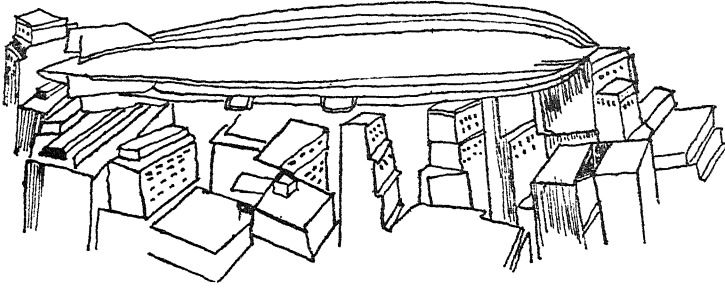
नगर पर उड़ता हुआ एक वायुपोत

गुब्बारे का सिद्धान्त भी उसी ने आविष्कृत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार लम्बोतरे आकार के बड़े गुब्बारे के अन्दर हवा से भरा एक और गुब्बारा रहता है, जो गैस का परिमाण कम हो जाने पर भी हवा भरे रहने के कारण खोल की आकृति को बिगड़ने या पिचकने नहीं देता। म्यूनियर ने अपने पोत में नौकाओं की भाँति सूच्याग्र, पृष्ठभाग, सुकान के लिए पतवार और हवा काटने के लिए तीन नोदकों की व्यवस्था भी रखी थी। लेकिन अर्थाभाव के कारण म्यूनियर अपनी कल्पना के इस वायुपोत का कभी निर्माण न कर सका।

उसके बाद ब्लांचार्ड नामक एक अन्य फरान्सिसी उड़ाका भी वायुपोत में नोदक के प्रयोग में असफल रहा। 'हवा से हलकी उड़ान' के इतिहास में जीन पीअर ब्लांचार्ड का

नाम और काम ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। ब्लांचार्ड ने 'हवा से भारी उड़ान' के लिए भी एक यंत्र बनाया था। उसने गुब्बारों में कई उड़ानें कीं। शीघ्र ही उसकी प्रसिद्धि सारे यूरोप में हो गई। ७ जनवरी १७८५ को उसने डॉ० जॉन जेफ्रीज़ नामक एक अमरीकी डाक्टर के साथ गुब्बारे में इंग्लिश चैनल को पार किया। गुब्बारे में बैठकर समुद्र को पार करनेवाले विश्व के ये पहले हवाई यात्री थे। ब्लांचार्ड अपनी गुब्बारा-उड़ानों के प्रदर्शन के लिए जर्मनी, हालैंड, बेल्जियम, स्वीट्ज़रलैंड, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और अमेरिका भी गया। इन कई देशों में ब्लांचार्ड ने ही गुब्बारा-उड़ानों का सूत्रपात किया। अमेरिका वह १७९३ ई० में गया था। अमेरिका में पहली हवाई छत्री के सहारे एक
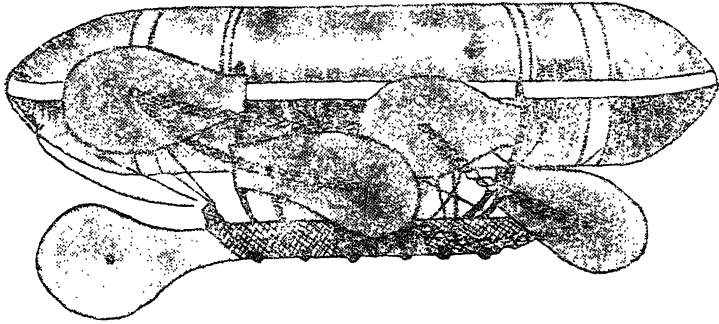
लेनाक्स का वायुपोत : सन् १८३५ ई०

कुत्ता, एक बिल्ली और गिलहरी को उतारने का श्रेय भी ब्लांचार्ड को ही है। हाईड्रोजन के आदि अन्वेषक कैवेंडिश के लिए वायुमंडल के उच्चतर स्तर से हलकी हवा का नमूना लाने का श्रेय भी ब्लांचार्ड को ही है।

लेकिन गुब्बारा बहुत समय तक केवल हवाई-प्रदर्शनों के काम आता रहा। उसे प्रदर्शन-स्तर से उठाकर हवायान के स्तर

पर पहुँचाने का श्रेय इंगलैंड के उड़ाकों, चार्ल्स ग्रीन, रार्बट हालैंड और मांक मेसन को है। १८३६ में ये तीनों सहयात्री एक गुब्बारे में लगातार ४२० मील तक उड़ते रहे।

सबसे पहले आस्ट्रिया ने १८४६ में गुब्बारों का सैनिक उपयोग किया। उन्होंने वेनिस नगर पर गुब्बारों में ३०-३० पौंड के बम रखकर हवाई आक्रमण किया था।

धीरे-धीरे गुब्बारों का प्रचलन बढ़ता गया। वैज्ञानिक वायुमंडलीय परीक्षणों और खोजों के लिए उनक अधिकाधिक उपयोग करने लगे। सैनिक और सामरिक उपयोग भी किया जाने लगा। गुब्बारे में बैठकर हवाई फोटू लेनेवाला फरान्सिसी उड़ाका नादार पहला हवाई फोटूग्राफर था, जिसने १८५८ में पेरिस के मकानों की छतों का फोटू खींचा था। और गुब्बारे में
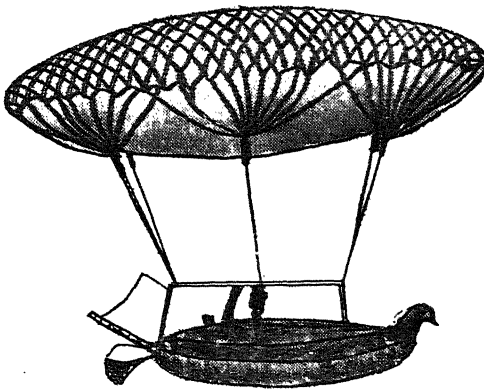
१८३७ में लार्ड कैले ने भी वायुपोत के लिए यह डिज़ाइन बनाई थी

बैठकर आल्प्स पहाड़ पार करनेवाला पहला उड़ाका भी एक फरान्सिसी ही था। उसका नाम है आरबन, जिसने १८४६ के सितम्बर महीने में यह ऐतिहासिक उड़ान भरी।

गुब्बारों के रूप में 'हवा से हलकी उड़ान तो सम्भव हो गई। लेकिन वास्तव में वह 'उड़ना' (फ्लाइंग) नहीं हवा में तैरना या टिके रहना (फ्लोटिंग) था। और आदमी तो उड़ना चाहता था। वह हवा से भारी चीजों को आकाश में अपनी इच्छानुसार उड़ाना चाहता था। उसका स्वप्न था 'हवा से भारी उड़ान' जो अभी तक पूर्ण न हो सकी थी।

४. ग्लाइडर

उड़ने के लक्ष्य की प्राप्ति में पक्षी मनुष्य का सबसे बड़ा और एकमात्र आदर्श रहा। आरम्भ में हम देख आये हैं कि पक्षियों के अनुकरण पर ही मनुष्य ने पंख फड़फड़ाने की प्रक्रिया को सिद्ध कर उड़ने के प्रयत्न किये। लेकिन अनेक कटु अनुभवों, असफल प्रयोगों, निराशाओं और अपार शारीरिक क्षतियों को सहकर उड़ने का अभिलाषी मनुष्य इस परिणाम पर पहुँचा कि शरीर में नकली पंख लगाकर, या पंख फड़फड़ानेवाले यंत्र बनाकर तो उड़ना असम्भव ही है।
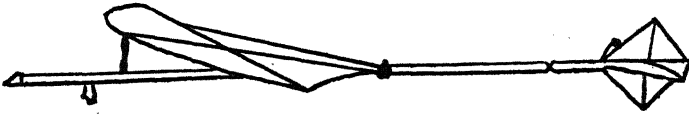
सर जार्ज केले का माडेल ग्लाइडर, १८०४ ई०

उड़ने का ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है हवा में अपने को बनाये रखने के ज्ञान की प्राप्ति। मनुष्य का उड़ने की दिशा में सारा प्रयत्न इसी ज्ञान की उपलब्धि का प्रयत्न है। जब उसने देख लिया कि पंख फड़फड़ाकर नहीं उड़ा जा सकता तो उसने अपने आदर्श पक्षियों को पुनः ध्यान से देखा और उनकी उड़न-क्रियाओं का गहराई से अध्ययन किया। और वह दो नतीजों पर पहुँचा। एक तो यह कि उसने पक्षियों की सारी उड़न-क्रिया को ही गलत

ढंग से समझा था और दूसरे यह कि उड़ने का एक ढंग 'स्थिर पंख' भी होता है।

उसने देखा कि कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जो अपने फैले हुए डैनों को स्थिर रखकर घण्टों हवा में उड़ते रह सकते हैं। चील को किसने नहीं देखा। कुछ ही देर जोरों से पंख फड़फड़ाने के बाद वह उन्हें फैला देती है और देर तक मँडराती हुई ऊपर और ऊपर उठती चली जाती है। गिद्ध और गरुड़ और बाज भी ऐसा ही करते हैं। जब पक्षी स्थिर पंखों से उड़ सकते हैं तो मनुष्य क्यों नहीं उड़ सकता ? और मनुष्य अपनी सारी प्रतिभा और बुद्धि लगाकर स्थिर पंखोंवाले उपकरणों और यन्त्रों के निर्माण में लग गया, जिसमें उसका उड़ने का चिर आकांक्षित स्वप्न पूरा हो सके। उसके इन प्रयत्नों में गुब्बारा-उड़ानों से अर्जित ज्ञान और अनुभव ने बड़ी मदद की।
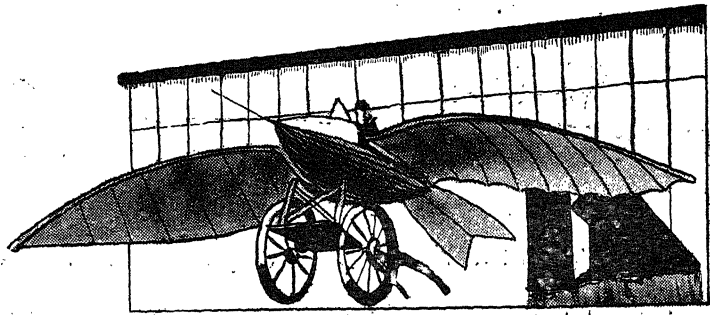
लेब्रिस का ग्लाइडर जो उसने १८६८ में बनाया था

स्थिर पंखों से हवा में उड़ने को हिन्दी में 'मँडराना' कहते हैं। विमान-शास्त्र में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'ग्लाइडिंग' का अभिप्राय भी लगभग यही है। उसका अर्थ है हवा में मँडराते हुए उतरना। 'ग्लाइडिंग' के लिए जो यंत्र काम में लाया जाता

है उसे 'ग्लाइडर' कहते हैं। हवाई जहाज चलाना सीखने से पहले प्रत्येक उड़ाके को ग्लाइडर के सहारे हवा में मँडराने अथवा ग्लाईडिंग का अभ्यास करना पड़ता है। ग्लाइडर को किसी ऊँचे स्थान से हवा में छोड़ दिया जाता है और वह बिना किसी शक्ति चालित यंत्र के सहारे मँडराता हुआ उतरता है और कभी-कभी हवा का अनुकूल दाब पाकर कुछ ऊँचा भी उड़ता है।

हमारा आज का वायुयान शक्ति-चालित यंत्र से सम्पन्न ग्लाइडर का ही विकसित रूप है।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि ग्लाइडर का सबसे पहले-पहल उपयोग करनेवाला व्यक्ति एक फरान्सिसी था। उसका नाम एरियस था और उसी ने सबसे पहले स्थिर पंखों के सहारे मँडराने का प्रयत्न किया था।

लेकिन न केवल ग्लाइडर अपितु वायुयान के निर्माण और
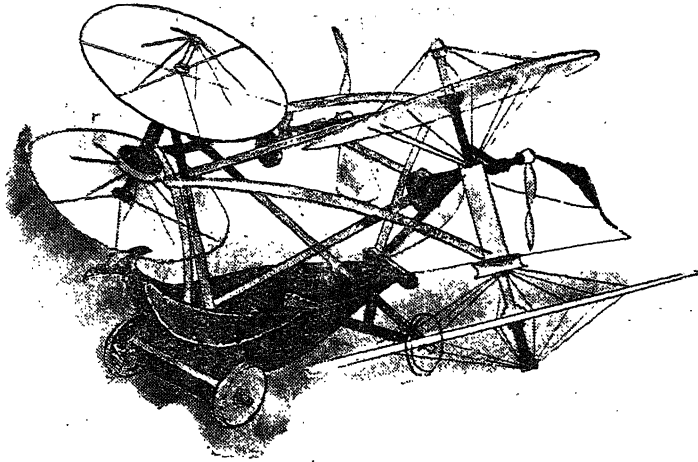
लार्ड कैले ने संयुक्त हेलीकाप्टर-वायुयान की एक आकृति भी १८४३ में तैयार की थी। यह अंग्रेज लार्ड आधुनिक विमानिकी के पिता माने जाते हैं।

विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया इंग्लैण्ड के सम्पन्न लार्ड सर जार्ज कैले ने। १८०४ में कैले ने अपने सुप्रसिद्ध ग्लाइडर
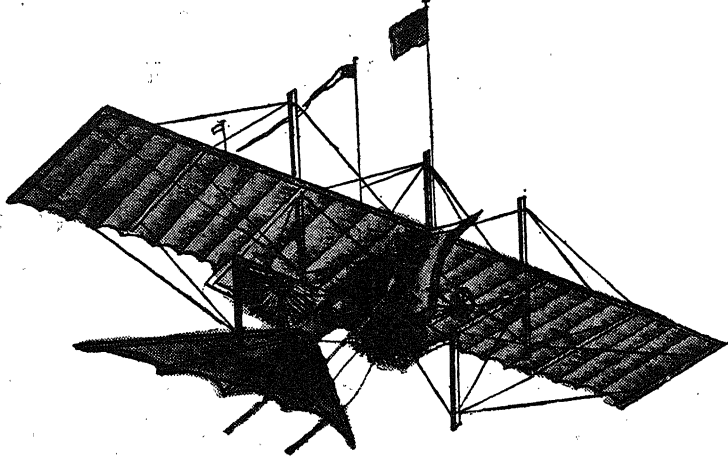
हेन्सन द्वारा १८४२-४३ में बनाई गई भाप-चालित वायुयान की आकृति। इसका बड़ा प्रचार हुआ और इसे आधार बनाकर काफी शोध-खोज की गई।

का नमूना बनाया और पतंग के सहारे उड़ाकर उसका परीक्षण भी किया। पतंग का वायुयान के पंख के लिए इससे पहले किसी
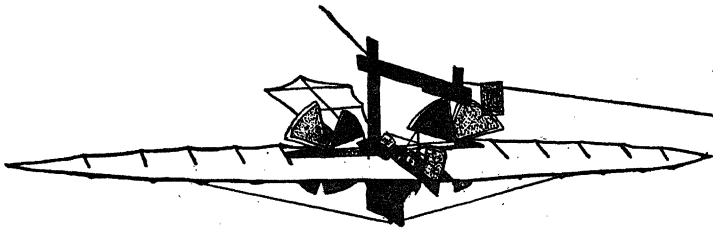
स्ट्रिंगफेलो के शक्ति-चालित वायुयान का नमूना, जो उसने १८४८ में बनाया था। यह शक्ति-चालित इंजिन से उड़नेवाला विश्व का पहला नमूना था।

ने भी उपयोग नहीं किया था। सर जार्ज कैले ने विमानिकी को और भी कई तरह से सम्पन्न किया। विमान को आगे खींचने

के लिए शक्ति-चालित नोदकों की आवश्यकता भी उन्होंने प्रतिपादित की। हवाई जहाजों के सन्तुलन और नियन्त्रण के लिए भी उन्होंने अत्यन्त मूल्यवान स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं, जिन पर आज भी अमल किया जाता है।
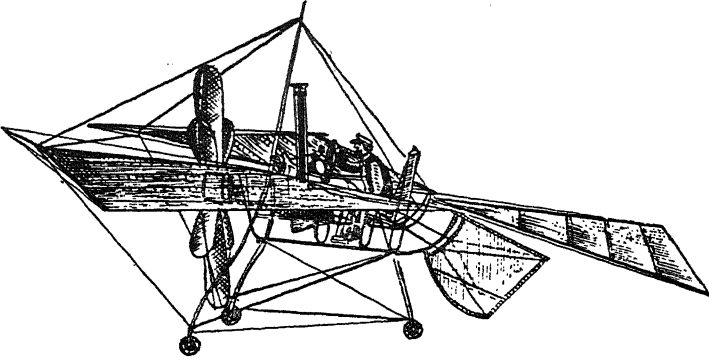
डुटेम्पल द्वारा १८५७ में बनाई गई वायुयान की डिज़ाइन

कैले के बाद विलियम सेम्युअल हेन्सन और जान स्ट्रिंगफेलो ने भी बड़ा उपयोगी कार्य किया। इन दोनो ने मिलकर नोदकों और पंखों के आकार-प्रकार में बड़ा सुधार और विकास किया जिसके बारे में हम आगे पढ़ेंगे।

१८५७ में एक फरान्सिसी कप्तान जीन मेरी लेब्रिस ने स्थिर पंखोंवाला एक छोटा-सा ग्लाइडर बनाया और उसमें बैठकर
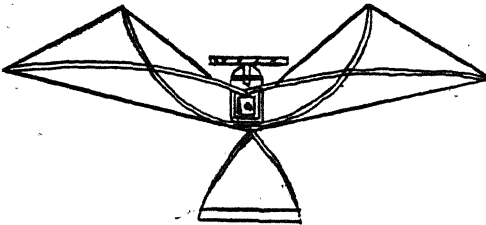
डु टेम्पल द्वारा निर्मित शक्ति-चालित वायुयान की एक और डिज़ाइन

सफलतापूर्वक उड़ा। उन्हीं दिनों एक दूसरे फरान्सिसी नौसैनिक फेलिक्स डु टेम्पल ने पहली बार हवाई जहाज के नमूने को शक्ति-

चालित यंत्र से सज्जित कर उड़ाने में सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार अन्वेषकों की एक गौरवशाली परम्परा वायु पर विजय प्राप्त करने के भगीरथ प्रयत्नों में जुटी रही। पूरी १८वीं शताब्दी और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अनेकानेक प्रयोग और परीक्षण होते रहे।

सभी पूर्व-परीक्षणों और प्रयोगों से अपने ज्ञान को सम्पन्न कर एक जर्मन-निवासी ओटो लिलिएन्थाल (१८४८-९६) ने
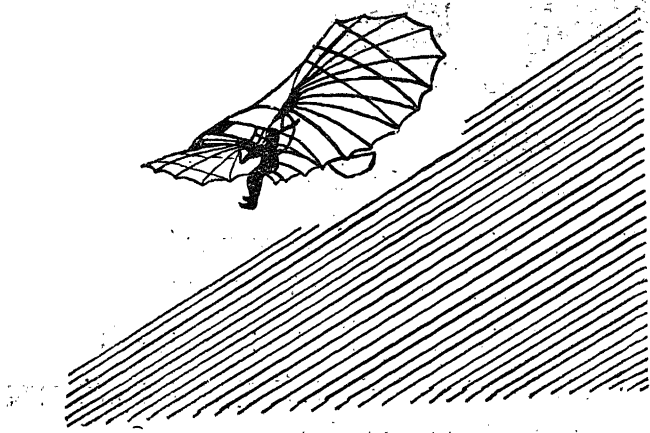
लिलिएन्थाल १८९५ में अपने ग्लाइडर में बर्लिन के निकट बनाई गई नकली पहाड़ी से ग्लाइडिंग करते हुए

उड्डयन की दिशा में बहुमूल्य कार्य किये। ग्लाइडरों का परीक्षण करते-करते वह शहीद भी हुआ। उड्डयन की सभी समस्याओं पर उसने विचार और कार्य किये। ग्लाइडिंग के लिए उसने एक नकली पहाड़ी भी बनवाई थी। ९ अगस्त १८९६ को, जब कि वह एक ग्लाइडर में मँडरा रहा था, सहसा हवा के रुक जाने पर गिरकर मर गया।

लिलिएन्थाल की शहादत ने अनेक अन्वेषकों को अनुप्राणित किया, जिनमें पिल्चर, चैन्यूट, पाब्लो सुआरेज, कप्तान फर्बर और

जोसेत्रिस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सब में चैन्यूट का कार्य सबसे मूल्यवान है। उसने अपना निजी ग्लाइडर बनाया, उसमें अगणित उड़ाने भरीं और आधुनिक वायुयान के अन्वेषक राइट बन्धुओं को उनके महान् कार्यों में प्रोत्साहित किया।

लिलिएन्थाल के प्रयत्नों की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि वह अपने ग्लाइडर को एक बार हवा में उतार देने के बाद उसका पूरा-पूरा नियन्त्रण नहीं कर पाता था। उन दिनों ग्लाइडर में उड़ाके खड़े-खड़े उड़ा करते थे और अपने शरीर के
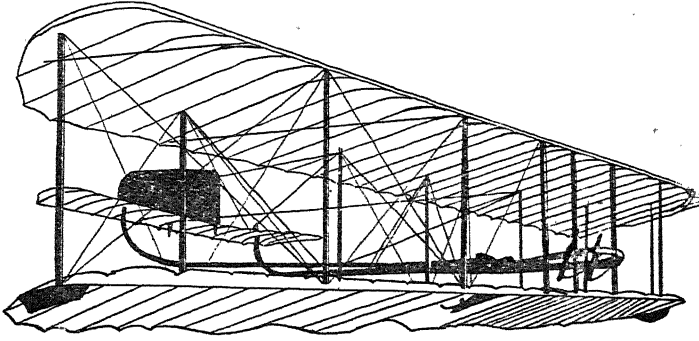
चैन्यूट-ग्लाइडर

अंग-उपांगों और सिर को हिला-डुलाकर उसका नियन्त्रण और उसे स्थिर रखने की चेष्टा करते थे। चैन्यूट ने ग्लाइडर के दोलन को रोकने और स्वाभाविक रूप से स्थिरता बनाये रखने के लिए कई यांत्रिक उपकरणों का आविष्कार किया।

इस प्रकार मानव-जाति आधुनिक युग के द्वार पर आ खड़ी हुई, जिसमें राइट बन्धुओं ने पहले शक्ति-चालित वायुयान का निर्माण कर मनुष्य की सदियों पुरानी उड्डयन-आकांक्षा को पूर्ण कर दिखाया।

आधुनिक यात्री विमान
यात्री कक्ष
दीर्घा
यात्री कक्ष
इंजीनियर कक्ष
विमान चालक का कक्ष
जलगृह
सामान रखने का स्थान
राडर
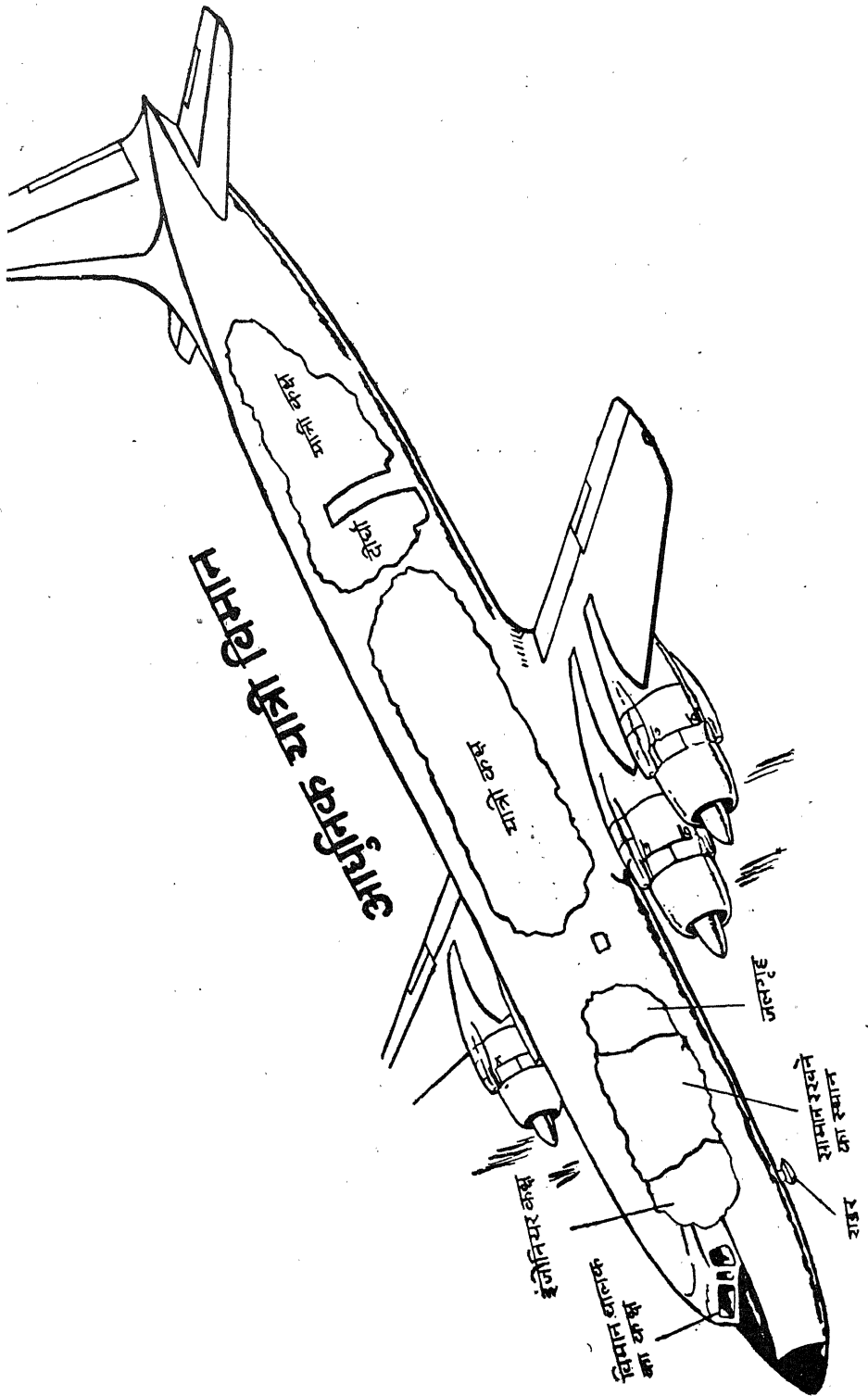
४. वायुयान का आविष्कार

वायुयान को शक्ति-चालित इंजिन से सन्नद्ध करके उड़ाने के प्रयत्न तो बहुत पहले से किये जा रहे थे । इस काम की सफलता के लिए तीन शर्तें नितान्त आवश्यक थीं: एक तो ऐसे पंखों का निर्माण जो विमान को हवा में उठाये रखें; दूसरे, ऐसी शक्ति का उत्पादन और उपयोग जिसके द्वारा विमान को हवा में चलाया जा सके; और तीसरे, जब मशीन उड़ने लगे तो उसका परिचालन और नियन्त्रण किया जा सके ।

वैमानिकी के इतिहास में इस दिशा में विभिन्न प्रयोग और परीक्षण किये गये । लेकिन अमेरिका के राइट बन्धुओं के पहले
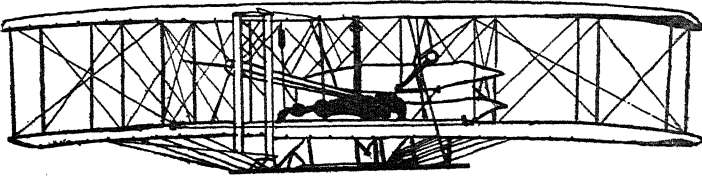
आरविल राइट ने १७ दिसम्बर १९०३ को इस वायुयान के द्वारा विश्व की पहली शक्ति-चालित हवा से भारी उड़ान सम्पन्न की ।

कोई भी अन्वेषक अथवा प्रयोगकर्ता इन तीनों आवश्यक शर्तों को पूरा न कर सका ।

जान स्ट्रिंगफेलो ने १८६८ में ग्लाइडर में लगाने के लिए एक शक्ति-चालित भाप का इंजिन बनाया था । यह इंजिन बनाने

से २० वर्ष पहले उसने अपने मित्र सेम्युअल हेन्सन के साथ एक हवाई मशीन की रूपरेखा १८४२ में पेटेंट करवाई थी। यह पेटेंट एक आदमी के बैठने लायक यान का था, जिसमें उत्तल पृष्ठवाले पंख थे, पृच्छ भाग में उच्चालित्र था, एक ऊर्ध्व सुकान भी था और छह पत्तियोंवाले नोदक को घूर्णित करने के लिए भाप का इंजिन भी था। उत्तल पृष्ठवाले पंखों की उनकी रूप-रेखा लगभग वही थी जो आधुनिक वायुवान के पंखों की होती है। इन दोनों मित्रों ने दो और मित्रों के साथ मिलकर वायुयान बनाने और चलाने की एक कम्पनी भी खोल दी थी। लेकिन न वायुयान बना और न कम्पनी चली। २० वर्ष बाद स्ट्रिंग-फेलो ने हवाई जहाज का माडल उड़ाने के लिए भाप के एक इंजिन का प्रदर्शन किया और उस इंजिन ने वायुयान के नमूने को हवा में उठाया और चलाया भी, लेकिन स्ट्रिंगफेलो उस नमूने में बैठकर उसका परिचालन और नियंत्रण नहीं कर रहा था। और उसका वह इंजिन कमरे के बाहर काम भी नहीं दे सका।

१८९६ में अमरीकी प्रोफेसर सैम्युअल पीअर पांट लैंगले (१८३४-१९०६) ने १८९६ में शक्ति-चालित यंत्र से सज्जित वायुयान बनाकर प्रति घंटा तीस मील की गति से पौन मील उड़ाकर दिखाया। लेकिन उसने भी यान में बैठकर उसका परि-चालन और नियंत्रण नहीं किया था।

लिलिएन्थाल ने अपने ग्लाइडर का नियंत्रण तो कर दिखाया लेकिन वह शक्ति-चालित यंत्र से सज्ज नहीं था, इसलिए उड़ नहीं सका, यानी, इंजन से उठा और चलता हुआ नहीं रहा।

वैमानिकी के इतिहास में पहली बार दो अमरीकी बन्धु,

विल्बर राइट (१८६७-१९१२) और आरविल राइट (१८७१-१९४८) ने १७ दिसम्बर १९०३ को तीनों शर्तें पूरी कर दिखाईं। अपने एक ग्लाइडर में भाप का इंजिन लगाकर आरविल १२ सेकंड तक उसमें उड़ा। उन १२ सेकंड में वह अपने वायुयान में बैठा उसका परिचालन और नियंत्रण कर रहा था, उत्तल पृष्ठवाले पंख विमान को हवा में उठाये हुए थे और ऐसी शक्ति का उत्पादन और उपयोग हो रहा था जिसने विमान को हवा में चलाये रखा।
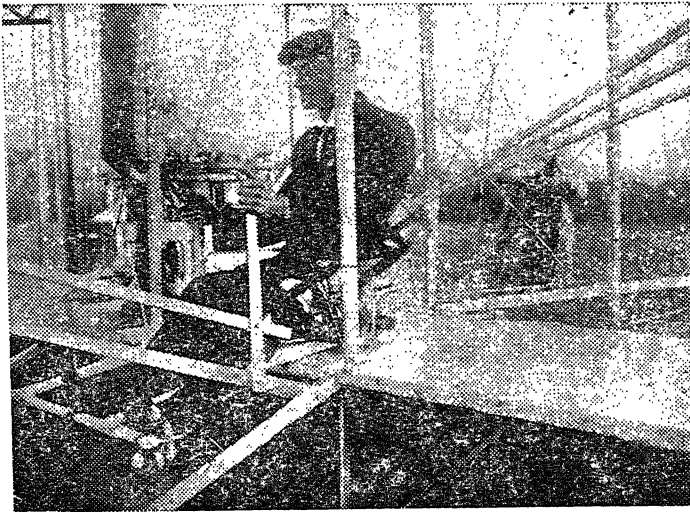
विल्बर राइट अपने वायुयान का परिचालन और नियंत्रण करते हुए।

यह विश्व की पहली शक्ति-चालित हवा से भारी उड़ान थी। लेकिन राइट बन्धुओं की यह सफलता आकस्मिक नहीं थी। इसके पीछे उनकी वर्षों की दीर्घ साधना और अथक परिश्रम था।

इन दोनों भाइयों का जन्म अमेरिका के ओहियो राज्या के

डेटन नामक नगर में हुआ था। पिता इनके पादरी थे। आरम्भ में दोनों ने मिलकर एक समाचारपत्र निकाला, फिर मुद्रक का काम करने लगे और अन्त में साइकिलें बेचने, और मरम्मत करने का कारोबार करते-करते साइकिलें बनाने लग गये थे। उड्डयन में उनकी रुचि बाल्यकाल से ही थी। लिलिएन्थाल के परीक्षणों से वे बड़े प्रभावित हुए थे और उसकी शहादत ने उन्हें इस दिशा में स्वयं प्रयोग करने के लिए अनुप्राणित किया।

आरम्भ में उड्डयन और विमान-शास्त्र से सम्बन्धित जितना भी साहित्य उपलब्ध हो सका उन्होंने पढ़ डाला और फिर परीक्षण में जुट गये। पक्षियों की उड़ान का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया और विमान को डगमगाहट से बचाने के लिए पंखों को माड़ने की क्रिया के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जो वैमानिकी को उनकी पहली महान् देन थी।

१९०० में उन्होंने अपना पहला ग्लाइडर बनाया। इस ग्लाइडर में उन्होंने सामने की ओर एक छोटे अनुप्रस्थ पंख के रूप में उच्चालित्र लगाया और पंखों को ऐंठने के लिए उनसे डोरियाँ बाँधकर हाथ में थाम लीं और एक भाई मशीन में लेट गया और दूसरे ने उसे रस्सों के सहारे पतंग की तरह उड़ाकर परीक्षण किया। १९०१ में उन्होंने दूसरा ग्लाइडर बनाया, लेकिन उसके पंख के पृष्ठ का उत्तलन अधिक हो जाने से वे असफल रहे। तब उन्होंने एक वायुनाल बनाकर उसमें अनेक आकार-प्रकार के पंखों का परीक्षण कर अभीप्सित आकार-प्रकार का पंख तैयार किया और १९०२ में तीसरा ग्लाइडर बनाया, जिसमें आशातीत सफलता मिली। इसी ग्लाइडर की उड़ान में उन्होंने पंखों की ऐंठन और सुकान की संयुक्त क्रिया के द्वारा ग्लाइडर की डगमगाहट

को नियंत्रित करने का ज्ञान अर्जित किया। वैमानिकी और विमान-शास्त्र को उनकी यह दूसरी महान् देन थी। इस तीसरे ग्लाइडर में वे कम-से-कम १००० बार मँडराये होंगे और कुल मिलाकर ६०० फुट की नियंत्रित और परिचालित उड़ान की होगी।
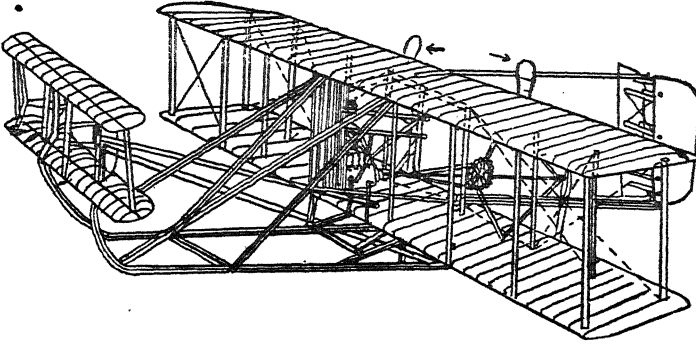
राइट बन्धुओं का दो आदमियों के बैठने लायक विमान; इसी में बैठकर विल्बर राइट १९०८ में फ्रान्स में उड़ा था।

जिस ग्लाइडर को उन्होंने शक्ति-चालित यंत्र से सज्जकर १७ दिसम्बर १९०३ को उड़ाया उसमें आगे की ओर दो उच्चालित्र और पीछे (पृच्छ की ओर) दो सुकान थे। उसमें भाप का जो इंजिन लगाया गया था वह ८-१२ अश्व-शक्ति का और ४ सिलिंडरवाला था। उसका वजन प्रति अश्व-शक्ति १५ पौण्ड था। उसमें दो नोदक भी लगाये गये थे। लेकिन उनकी यह पहली सफल उड़ान निजी थी और इसे और बाद की कई उड़ानों को ठेठ १९०७ तक उन्हें गुप्त रखना पड़ा, इस भय से कि कहीं कोई उनके पेटेंट की नकल न कर ले। १९०४ में उन्होंने १०५ उड़ानें कीं। १९०५ में वह ३८ मिनट और ३ सेकण्ड में लगातार २४॥ मील तक उड़ सके। १९०८ में उन्हें फ्रान्स से बुलावा आया। विल्बर वहाँ गया और ८ अगस्त १९०८ को पहली

सार्वजनिक उड़ान की। उस समय तक राइट बन्धु अपने वायुयान में पेट्रोल-चालित इंजिन का उपयोग करने लग गये थे। २१ सितम्बर को वह लगातार १ घंटा ३१ मिनट और २५·४ सेकण्ड तक हवा में रहा। १८ दिसम्बर को उसने ३०५ फुट की उड़ान की जो अभी तक की गई उड़ानों में सबसे ऊँची थी और ३१ दिसम्बर को लगातार २ घंटे २० मिनट और २३·२ सेकण्ड तक हवा में रहकर उसने २० हजार फ्रांक का पुरस्कार जीता।
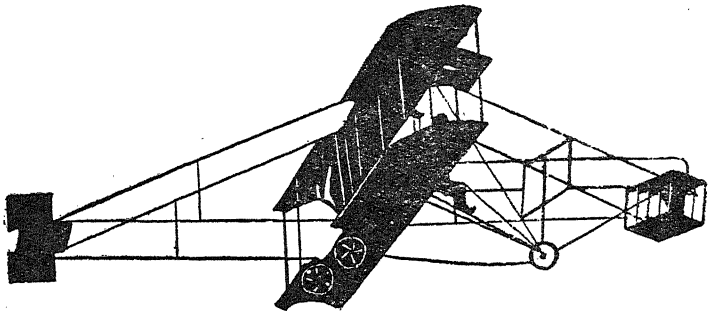
कुर्टिस का वायुयान, जिसमें बैठकर उसने १९०९ में तेज हवाई दौड़ का पुरस्कार जीता था।

राइट बन्धुओं के साथ-साथ वॉइसिन, ब्लेरिओट और कुर्टिस के नामों का उल्लेख करना भी आवश्यक है। वॉटसिन ने एक आदमी के बैठने लायक वायुयानों के निर्माण और विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। ब्लेरिओट ने भी कई नई डिज़ाइनों के प्रयोग किये और १९०९ की हवाई दौड़ में इंग्लिश चैनल पार करनेवाला वह पहला सफल उड़ाका था। कुर्टिस ने ही वैमानिकी को डगमगाहट के नियन्त्रण के लिए पंखों की ऐंठन-क्रिया के लिए लोलक प्रदान किये। राइट बन्धु पंखों के नियन्त्रण के लिए उन्हें रस्सों से बाँधकर ऐंठते थे, कुर्टिस ने पंखों पर लोलक लगा दिये। उसने १९०९ में तेज़ हवाई दौड़

का इनाम भी जीता था।

आविष्कृत होने के साथ ही वायुयान तेजी से प्रगति करने लगा। पहले महायुद्ध में ही काफी प्रगति हुई और दूसरे महायुद्ध में तो लगभग सारा युद्ध ही वायुयानों से लड़ा गया; और अनेक प्रकार के नये यांत्रिक साधनों और आविष्कारों से वह सम्पन्न होता गया।

५. उड्डयन के सिद्धान्त

उड़ने का मतलब है गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध हवा में ठहरे रहना। इस बात को यों भी कह सकते हैं कि जब कोई भी वस्तु (अथवा पदार्थ) गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध हवा में थम जाती है, यानी गिरती नहीं तो वह उड़ रही होती है। जब वायुयान उड़ता है तो हवा उसे भी थामे रहती है। इसलिए उड्डयन के सिद्धान्त को समझने के लिए हवा के स्वरूप, उसकी प्रकृति और शक्ति (फोर्स) को वैज्ञानिक ढंग से समझना आवश्यक है। अंग्रेजी में इसको एरो-डाइनिमिक्स और हिन्दी में वायुगतिकी कहते हैं।

सबसे पहले तो यह समझना होगा कि हवा क्या है। हवा सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं का संपुंजन है, जो हमारे चारों ओर छाये हुए हैं। ये परमाणु अपने मध्य संचरित प्रत्येक पदार्थ (अथवा पिंड) का अवरोधन करते हैं। इन परमाणुओं को लहरों और भँवरों में संकुलित किया जा सकता है। और इन्हें संपीडित (सघन) और विपीडित (विरलीकरण = छितराना) भी किया जा सकता है।

हवा को हम देख नहीं सकते, क्योंकि उसका निर्माण गैसों से होता है और प्रायः सभी गैसें अदृश्य होती हैं। हवा में नाइट्रोजन नामक गैस का बहुलांश होता है। आक्सीजन

केवल पंचमांश होती है। शेष कारबन-डाईआक्साइड, क्रिप्टन, अरगॉन आदि अन्य कई गैसें अल्पमांश में होती हैं। हमारे चारों ओर की हवा में गैसों के अतिरिक्त पानी की भाप और धूल भी मिली रहती है। हवा का वजन या भार भी होता है; लेकिन हवा वजन में बहुत ही हलकी होती है। एक घनफुट (एक फुट लम्बी, एक फुट चौड़ी और एक फुट ऊँची) जगह में जितनी हवा आ सके उसका वजन एक औंस से भी कम होता है। हवा में दाब की क्षमता भी होती है। धरती की सतह पर यह क्षमता प्रति वर्ग इंच १५ फुट के लगभग होती है। जैसे-जैसे ऊपर उठते जाते हैं यह दाब-क्षमता भी कम होती जाती है। इसी लिए कहा जाता है कि वायुमंडल के निम्नतम स्तर की हवा भारी और उच्चतर स्तर की हवा हलकी होती है। यानी पहाड़ की चोटियों पर और उनसे भी ऊपर हवा का दाब कम रहता है। हवा में कितना ज़ोर (फोर्स) होता है, इसे भी समझ लेना आवश्यक है। इस ज़ोर को हम हवा की दाब-क्षमता से समझ सकते हैं। प्रतिक्षण हवा कई टनों के ज़ोर से, यानी प्रतिवर्ग इंच १५ पौण्ड के ज़ोर के साथ, हमारे शरीर से धकियाती रहती है। हमें इस ज़ोर का पता इसलिए नहीं लगता कि हमारे शरीर के अन्दर की हवा और खून भी इतने ही ज़ोर के साथ मुकाबले में बाहर की हवा को धकियाते रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो हमारा शरीर पलक मारते चिप्पा हो जाये !

उड्डयन को समझने के लिए हवा के सम्बन्ध में कई बातों को समझना होता है। विशेष रूप से हवा के अनन्त परमाणुओं का स्वरूप, उनके स्वभाव और गति-विधि को जानना-सम-

झना आवश्यक होता है। क्योंकि हवा के अनन्त परमाणु ही हैं जो किसी भी पक्षी अथवा वायुयान को उड़ने देते हैं और उनके पंखों को सँभाले रखते हैं। यह सारी क्रिया परमाणुओं के संपीडन और विपीडन के परिणामस्वरूप ही होती है। संपीडन-विपीडन के दौरान में परमाणु संकुलित होकर लहरें और भँवरें बनाते हैं। वैमानिकी-विशारदों का सदा से यह लक्ष्य रहा है कि परमाणुओं की संपीडन-विपीडन की सामर्थ्य का इस तरह समुचित और सम्पूर्ण उपयोग किया जा सके जिसमें कम-से-कम भँवर उत्पन्न हों।

वायुगतिकी के मौलिक सिद्धान्तों में एक महत्वपूर्ण मत का प्रतिपादन सबसे पहले सर आइज़क न्यूटन ने किया। उन्होंने यह मत स्थिर किया कि हवा के परमाणु जब तक किसी पृष्ठ से नहीं टकराते उनकी गति सदैव एक सीध (अनुप्रस्थ = सरल रेखा के रूप) में रहती है। टकराते ही वे पृष्ठ के साथ-साथ उससे घिसटते हुए चलने लगते हैं। इस विच्युति के कारण पिंड पर उनके आवेग की दिशा और मात्रा की गणना करने के साथ ही उन्नयन और अवनयन ऐसे दो घटक निर्धारित किये जाते हैं।

उन्नयन, जिसे अंग्रेज़ी में 'लिफ्ट' कहते हैं, हवा के बहाव का लम्ब अथवा ऊर्ध्वाधर आवेग है; और अवनयन, जिसे अंग्रेजी में, ड्रैग' कहते हैं, हवा के बहाव का समानान्तर अथवा अनुप्रस्थ आवेग है। उन्नयन उठाता है और अवनयन नीचे खींचता है।

लेकिन अपनी स्थापना में न्यूटन ने वायु के परमाणुओं की अन्तर्क्रिया पर कोई विचार नहीं किया। यह तथ्य उनके ध्यान में ही नहीं आया कि परमाणुओं की अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप पिंड के ऊपरले पृष्ठ का दाब घटने की संभावना

भी हो सकती है। यदि न्यूटन की स्थापना के अनुसार गणना की जाये तब तो पर्ण (पंख) का उन्नयन बहुत ही थोड़ा होगा। और यही कारण था कि बहुत दिनों तक वैज्ञानिक दृढ़तापूर्वक मानते रहे कि मनुष्य कभी उड़ नहीं सकता। यद्यपि वायुयान के अन्वेषकों ने वैज्ञानिकों के इस दावे को कभी स्वीकार नहीं किया। वे हतोत्साहित हुए बिना अपने प्रयोगों-परीक्षणों में लगे रहे और उन्होंने इस सत्य को एक बार फिर प्रमाणित कर दिया कि कोई बात व्यवहार में पहले आती है और उसका सिद्धान्त बाद में स्थिर होता है।

जिस तथ्य की ओर न्यूटन का ध्यान नहीं जाने पाया उस ओर डेनियल बरनौली का ध्यान १७३५ में गया और उसने परमाणुओं की अन्तर्क्रिया को ध्यान में रखकर दाब के नियम का प्रतिपादन किया। उसके मतानुसार सतत श्यानरहित द्रव में द्रव परमाणु की दाबऊर्जा और गतिजऊर्जा एक समान रहती है। श्यान का अर्थ है 'द्रव -घर्षण' या परमाणुओं का आपस में घिसटने पर अवरोधन। इस नियम के कारण यदि वेग-वितरण की जानकारी हो तो पर्ण का उन्नयन और अवनयन निकाला जा सकता है।

१९०४ में जर्मनी के लुडविग प्रांडल ने सीमान्त-स्तर के नियम का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार पिंड के पृष्ठ से सम्पर्कित प्रतिरुद्ध हवा का पतला स्तर मूल प्रवाह के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन का कारण होता है। बरनौली के नियमानुसार द्रव-परमाणुओं को कम (निम्न) दाब-क्षेत्र से अधिक (उच्च) दाब-क्षेत्र में ले जाने का काम गतिज-ऊर्जा करती है। यदि श्यान गतिज-ऊर्जा के कुछ अंश को ऊष्मा में परिवर्तित

कर दे तो सीमान्त स्तर का द्रव अभीप्सित गति के अभाव में अधिक (उच्च) दाब-क्षेत्र तक पहुँचने ही नहीं पायेगा, क्योंकि
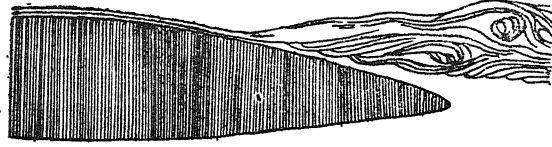
सीमान्त-स्तर

पिंड के पृष्ठ से संपर्कित प्रतिरुद्ध हवा का पतला स्तर मूल प्रवाह के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन का कारण होता है। पिंड के अन्तिम छोर पर हवा का स्तर मोटा हो जाता है।

सीमान्त-स्तर के कारण इतने दाबवाले प्रवाह का पिंड पर उभार एकदम असम्भव हो जायेगा। वास्तव में होता यह है कि इस बिन्दु पर आकर प्रवाह पिंड से पृथक् हो जाता है और मूल प्रवाह से एक सर्वथा भिन्न ही प्रवाह दृष्टिगोचर होने लगता है; क्योंकि हवा का स्तर कुछ मोटा हो जाता है। प्रवाह के इसी पपरिवर्तन के कारण पिंडों का अवनयन होता है, इसी लिए इस आवेग को अवनयन कहा गया।

१६०२ से १६०७ तक के वर्षों में तीन वैज्ञानिक—जर्मनी का विल्हेल्म कुट्टा, रूस का निकोलाई जुकोव्स्की और इंग्लैण्ड का फ्रेडरिक लैंकेस्टर एक दूसरे से स्वतंत्र परन्तु एक ही निर्णय पर पहुँचे। उन्होंने इस बात का पता लगाया कि पंख का उन्नयन कैसे होता है। यह पाया गया कि उन्नयन में भी सीमान्त-स्तर का महत्त्व पूर्ण योग रहता है। आयताकार पिंडों में ही प्रवाह का परिवर्तन देखने में आता है। पर्ण के चारों ओर आवर्त्तन होते रहने के कारण द्रव के प्रवाह में परिवर्तन नहीं होता; वह पर्ण के अन्तिम सिरे से सरलतापूर्वक प्रवाहित होता रहता है। आवर्तन

घूर्णायमान होने के कारण मूल प्रवाह में इस तरह वृद्धि हो जाती है कि वेग का अनुपात एक बाजू पर अधिक और दूसरी
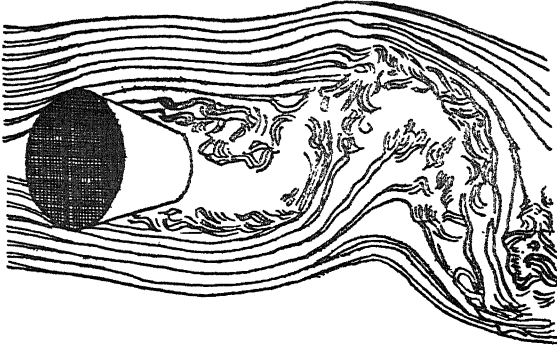
आयताकार पिंड के पृष्ठों के अन्तिम छोरों पर प्रवाह के स्वरूप में जो परिवर्तन होता है उसे वायु-प्रवाह में एक बेलनाकार पिंड के द्वारा दिग्दर्शित किया गया है। बेलनाकार पिंड के पीछे प्रवाह में भँवर बनते दिखाये गये हैं, जो अवनयन का कारण हैं।

पर कम हो जाता है। बरनौली के नियम में हम देख ही आये हैं कि वेग की वृद्धि दाब को घटाती और उसकी कमी दाब को बढ़ाती है। पर्ण के उन्नयन का यही कारण है।
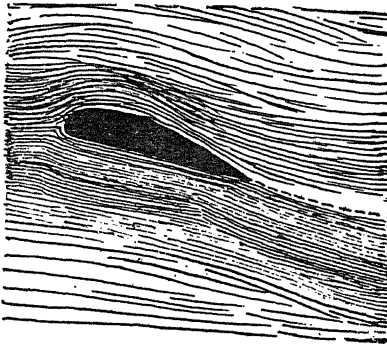
पर्ण या चपटेपदार्थ के उत्तल पृष्ठों के छोर पर, यदि आघात कोण अधिक न रहे तो प्रवाह का स्वरूप एक ही जैसा बना रहता है

इस सारी सैद्धान्तिक चर्चा को यदि हम पतंग पर घटित करें तो बात सरलता से समझ में आ जायेगी। पतंग कई लोगों ने उड़ाई होगी और यदि उड़ाई न होगी तो उसका उड़ना तो
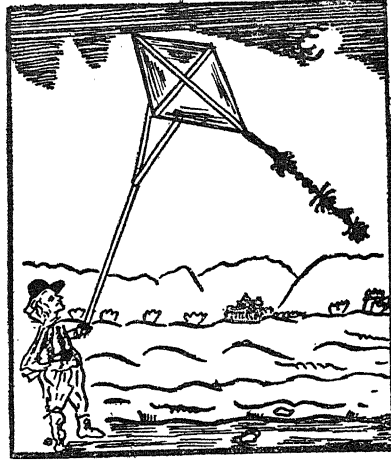
पतंग डोर के सहारे कुछ तिरछी ही उड़ती हैं। यह तिरछापन वैमानिकी में आघात कोण कहलाता है।

देखा ही होगा। पतंग की उड़ान में मुख्य बात यह है कि वह हवा में कुछ तिरछे रहकर ही उड़ सकती है। एकदम खड़ी या लेटी पतंग कभी नहीं उड़ती। जिस डोर से पतंग बँधी रहती है वह उसे उड़ाने के लिए नहीं, आगे बढ़ाने के लिए होती है। आगे चलकर हम देखेंगे कि वायुयान को भी उड़ाने के लिए उसे बढ़ाते यानी तेज-गति से चलाये रखना नितान्त आवश्यक है। वायुयान में यह काम उसके नोदक अथवा वायुचक्र से लिया जाता है। पतंग में यही काम डोर करती है।

पतंग के दो पृष्ठ होते हैं। एक ऊपरला और दूसरा निचला। जब पतंग उड़ाई जाती है तो हवा उसके निचले पृष्ठ

को धकेलती हुई निकलती है। धक्का पाकर पतंग का ऊपरला हिस्सा तानी के स्थान से कुछ उठकर (उत्तल) उन्नताकार हो जाता है। अब हवा दो धाराओं में विभक्त होकर पतंग के ऊपरले और निचले दोनो पृष्ठों के साथ प्रवाहित होने लगती है। निचले पृष्ठवाली धारा का वेग ऊपरले पृष्ठवाली धारा के वेग से कुछ
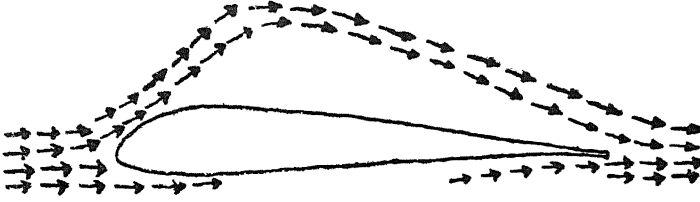
वायु की ऊपरली धारा को उत्तल पृष्ठ के कारण निचली धारा से कुछ अधिक फासला थोड़े घुमाव के साथ लेकिन उतने ही समय में पूरा करना पड़ता है। इसलिए उसकी गति अधिक और दाब-क्षमता कम हो जाती है।

मन्द होता है। ऊपरले पृष्ठवाली धारा को निचली धारा से कुछ अधिक फासला थोड़े घुमाव के साथ तय करना होता है और उतने ही समय में करना होता है जितने में निचली धारा अपना फासला पूरा करती है। इस कारण स्वाभाविक रूप में ऊपरली धारा का वेग बढ़ जाता है। हम पढ़ आये हैं कि जब हवा के प्रवाह का वेग बढ़ता है तो उसका दाब कम हो जाता है और वेग घटता है तो दाब अधिक हो जाता है। नीचे वाली धारा पतंग को ढकेलती भी है, परन्तु अधिक दाब-क्षेत्र भी बनाती है। वह पतंग का कुछ उन्नयन तो अवश्य करती है लेकिन पूरा उन्नयन होता है ऊपरली धारा से, जो कम दाब क्षेत्र बनाती और पतंग को ऊपर की ओर खींचती है। निचला पृष्ठ केवल एक तिहाई उन्नयन दे पाता है जब कि ऊपरला दो-तिहाई

उन्नयन देता है। निचली धारा पतंग को ऊपर उठाती है और ऊपरली धारा पतंग को ऊपर खींचती है। पतंग के उड़ने का यही कारण है।

उड़ने के लिए सामने या आगे की ओर से खिंचाव होना भी आवश्यक है। पतंग को यह आवश्यक खिंचाव डोर से मिलता रहता है। लेकिन पक्षी के तो कोई डोर नहीं होती। फिर वह कैसे उड़ता है?

पक्षी की उड़ान को समझने के लिए उसके पंखों (डैना, विंग) और परों (फ़ेदर) की बनावट, उपयोग और क्रिया को ध्यान से
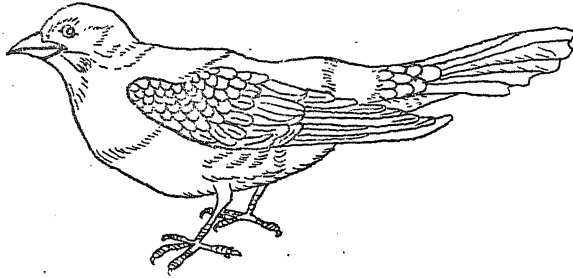
पक्षी उड्डयन में सदैव मनुष्य का आदर्श रहा है।

देखने-समझने की आवश्यकता है। इसी लिए उड़ने के अभिलाषी व्यक्ति आरम्भ से ही पक्षियों की उड़ान का गहन अध्ययन करते आये हैं।

हम देख आये हैं कि पक्षी दो तरीकों से उड़ता है—एक तरीका है पंख फड़फड़ाकर उड़ना और दूसरा तरीका है पंख स्थिर करके हवा में मँडराते हुए ऊपर की ओर उड़ते जाना। हम यह भी देख आये हैं कि आरम्भ में पक्षी की उड़ान को सर्वथा गलत ढंग से समझा गया। बहुत समय तक यही माना जाता रहा कि पक्षी हवा में ठीक उसी रीति से उड़ते हैं जिस

रीति से हम पानी में तैरते हैं। लेकिन तीव्रगति फोटोग्राफी के आविष्कार और पक्षियों की उड़ान के गहन अध्ययन ने इस धारणा को भ्रामक सिद्ध कर दिया। वास्तव में पक्षी ठीक उसी रीति से उड़ता है जिस रीति से मानव-निर्मित वायुयान।

पक्षी अपने डैनों की सहायता से उड़ता है। प्रत्येक डैने में कई पर होते हैं। कुछ पर छोटे होते हैं और कुछ बड़े और कुछ परों की बनावट भिन्न-भिन्न होती है और अलग-अलग परों का कार्य-व्यापार और प्रयोजन भी अलग-अलग होता है। अगर पक्षी के पंखों को उसके शरीर के दोनों ओर फैला दिया जाये तो चोंच से दुम की ओर को परों का एक सिलसिला-सा चला जाता है। आरम्भ की ओर जो चार-पाँच पर होते हैं उनकी बनावट शेष सभी परों से एकदम भिन्न होती है। आरम्भिक परों में चार या पाँच बाहरी पर ऐसे होते हैं, जिनमें दंड के सामने की ओर पक्खे या तो होते ही नहीं या बहुत छोटे होते हैं, लेकिन दंड के पीछे की ओर पक्खे का क्षेत्रफल काफी विस्तृत होता है। जब पक्षी पंख फड़फड़ाकर उड़ता है और डैनों से नीचे की ओर थाप मारता है तो अपनी विशिष्ट बनावट के कारण ये आरम्भिक पर उँगलियों की तरह फैल जाते हैं और वायु का दाब दंड के पिछली ओर वाले पक्खे के विस्तृत क्षेत्रफल पर क्रियाशील होता हुआ फैले हुए प्रत्येक पर को कुछ इस तरह

पर के दंड के दोनो ओर पक्खे निकले होते हैं।

मोड़ (या ऐंठ) देता है कि उसकी शक्ल एकदम वायुयान के नोदक-जैसी हो जाती है, और वह बिलकुल वायुयान के नोदक की ही तरह काम भी करने लगता है। लेकिन सभी पक्षियों परों में ऐसा विलगाव नहीं होता, केवल मन्दगति से उड़नेवाले पक्षियों के साथ ही ऐसा होता है।
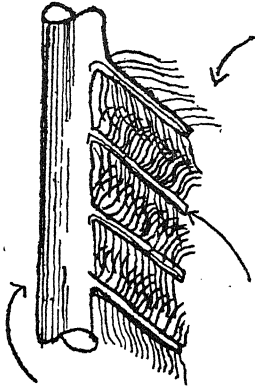
आरम्भ के परों में दंड के सामने की ओर पक्खे नहीं होते। पीछे की ओर पक्खे का विस्तृत क्षेत्र-फल होता है।

क्षिप्रगति से उड़नेवाले पक्षियों के डैने लम्बे और पतले होते हैं। ऐसे पक्षी जब उड़ान में डैनों द्वारा नीचे की ओर थाप मारते हैं तो प्रत्येक डैने का सम्पूर्ण बाहरी अंश ही मुड़ (या ऐंठ) कर नोदक बन जाता है। यहाँ यह उल्लेख भी आवश्यक है कि सीधी उड़ान में पक्षी अपने पंखों की थाप केवल नीचे की ही ओर नहीं मरता, वह नीचे की ओर थाप मारने के साथ-ही-साथ कुछ आगे की ओर को भी थाप मारता जाता है। इस क्रिया के द्वारा हवा जोरों के साथ पीछे की ढकेली जाती है। हम न्यूटन का यह सिद्धान्त पढ़ आये हैं कि प्रत्येक क्रिया की उतने ही जोर की विपरीत प्रतिक्रिया भी होती है। जब हवा पीछे को

पक्षी का पंख-चालन

जाती है तो वह पक्षी को आगे की ओर खींचती है। इस बात को नाव के खेने से भी समझा जा सकता है। चप्पू से पानी को पीछे धकेला जाता है तब नाव आगे को खिंचती है।

लेकिन सामने की ओर से केवल खिचाव ही हो तो हवा में टिके रहने के लिए आवश्यक उन्नयन न होगा। पीछे धकेली जाती हवा में उन्नयन के साथ-ही-साथ अवनयन आवेग भी होता है। पक्षी के बाहरी प्रारम्भिक परों की ऐंठन का कोण इस तरह का रहता है कि उनसे खिंचाव के साथ ही कुछ उन्नयन
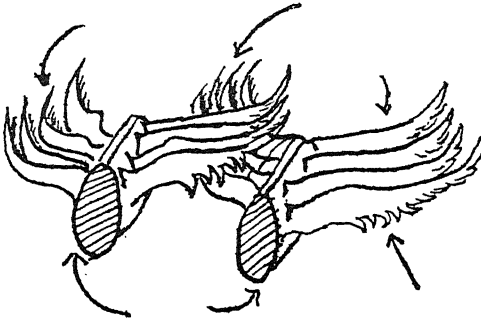
पक्षी का पंख-चालन

भी होता रहे। लेकिन पक्षी को हवा में टिकाये रखने के लिए इतने उन्नयन से काम नहीं चलता। शेष आवश्यक उन्नयन पक्षी डैने के भीतरी माध्यमिक परों से प्राप्त करता है। और इस प्रकार पक्षी अपने पंखों की विशिष्ट बनावट और विशिष्ट क्रियाओं के द्वारा उड़ता है (हवा में टिका भी रहता है और आगे को बढ़ता भी जाता है)।

उड़ते समय पक्षी अपने डैनों की थाप नीचे की ओर मारता है, आगे की ओर मारता है और ऊपर की ओर भी मारता चलता है। यानी पक्षी के पंख की चाल ऊपर, नीचे और सामने

की ओर को होती है। पक्षी के पंख की ऊपर की ओर की थाप की गति (या वेग) सामान्यत: नीचे की ओर की थाप से लगभग दुगुनी होती है। ऊपर की ओर की थाप से पक्षी को उड़ने के लिए कुछ उन्नयन मिलता है, लेकिन आगे बढ़ने का धक्का (आगे की ओर खिंचाव) नहीं मिलता। धकेला वह जाता है पंखों की नीचे और आगे की ओर की थाप से ही। पक्षियों के उड़ते समय 'फुर्र-फुर्र' की जो ध्वनि होती है वह डैनों के प्रारम्भिक परों के छोर से ही निकलती है। ठीक ऐसी ही ध्वनि वायुयान के नोदक से भी निकलती है।

पक्षी के पंख-चालन के रेखांकन

कबूतर जब उड़ने लगता है तो जोर की फटफटाहट की आवाज़ सुनाई देती है। यह आवाज़ 'फुर्र-फुर्र' से भिन्न है और इसका कारण भी भिन्न है। हवा में उठने के लिए एक खास जोर और वेग की आवश्यकता होती है। प्रत्येक पक्षी का यह जोर और वेग उसके शरीर के वजन, पंखों की लम्बाई-चौड़ाई और उड़न-सामर्थ्य के अनुपात में भिन्न होता है। हवा में उठने के लिए प्रत्येक पक्षी को अपने इस जोर और वेग का भरपूर और अधिकतम उपयोग करना पड़ता है। अधिकतम उपयोग के द्वारा एक निश्चित ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद तो उड़ान का कार्य अपेक्षाकृत सरल और कम श्रमसाध्य हो जाता है। कबूतर की फटफटाहट उस समय सुनाई देती है जब उड़ने के लिए दोनों पंखों को अधिकतम शक्ति के साथ ऊपर की ओर फेंकता है। ऐसा करने में दोनों पंखों की पीठ आपस में बड़े जोर के साथ

टकराती और फटाफट की आवाज सुनाई पड़ती है।

ऊपर की ओर की थाप के अन्त में डैने एकदम सीधे और नीचे की ओर की थाप के अन्त में कुछ वक्राकार हो जाते हैं। ऊपर की ओर की थाप के आरम्भ में वायु के अवरोधन से बचने के लिए डैने वक्र होते हैं। नीचे की ओर की थाप के अन्त में वे इसलिए सीधे हो जाते हैं कि संचलन के लिए अधिकतम क्षेत्रफल का अवकाश मिल सके।
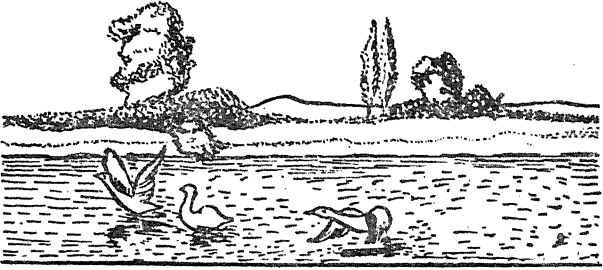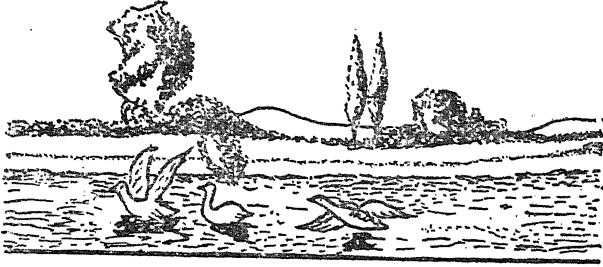
पानी के पक्षियों की उड़ान

पंख स्थिर रखकर मँडराने के लिए भी पहले तो पंखों को फड़फड़ाकर ही उड़ना होता है। लेकिन सभी पक्षी मँडरा नहीं सकते। केवल वही पक्षी मँडरा सकता है जिसके डैने उसके शरीर के अनुपात में इतने बड़े, सक्षम और हलके हों कि वह उन्हें थोड़ी ही देर तक फड़फ़ड़ाने के बाद एक विशिष्ट वेग और ऊँचाई प्राप्त कर ले।

गिद्ध या चील का उदाहरण लेना ठीक रहेगा। लगभग ५ सेर वजन के गिद्ध के प्रत्येक पंख की लम्बाई ३ फुट और चौड़ाई १ फुट के लगभग होती है। आरम्भ में उसे पंख फड़फड़ाकर उड़ने में बड़ा जोर लगाना पड़ता है और गति भी कुछ धीमी होती है। जब वह ५० या १०० फुट की ऊँचाई पर पहुँच जाता है तो उसे इतने जोर और वेग से पंख नहीं फड़फड़ाना पड़ता। इतनी ऊँचाई पर पहुँचने के बाद वह मँडराना शुरू कर देता है। और ५०० से २००० फुट की ऊँचाई के बीच तो वह इतनी सरलता से मँडराता है मानो यह सारी क्रिया अनायास ही हो रही हो।

पक्षियों के बिना पंख फड़फड़ाये उड़ने के सम्बन्ध में लार्ड रैले ने १८३३ में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि यदि कोई पक्षी बिना पंख फड़फड़ाये उड़ रहा हो तो समझना चाहिए कि या तो (१) उसका मार्ग अनुप्रस्थ (क्षेत्रिज—हारिज़ांटल) नहीं है, या (२) हवा के बहाव की दिशा अनुप्रस्थ नहीं है, या (३) हवा एक-जैसी नहीं है।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि जब पक्षी बिना पंख फड़फड़ाये मँडराता है तो अपने फैले हुए पंखों को आगे की ओर से थोड़ा उठा हुआ रखता है। इस तरह पंखों को किंचित् तिरछा किये बगैर वह मँडरा ही नहीं सकता।

इस बात को हम एक छोटे-से प्रयोग के द्वारा बड़ी सरलता से समझ जायेंगे। किसी गत्ते अथवा दफ्ती का टुकड़ा लेकर यदि हवा झलने का प्रयत्न करें तो तत्काल दो बातें दृष्टिगोचर होंगी। यदि उसे ऊर्ध्व स्थिति में रखकर यानी पंखे की तरह झलें तो हवा के परमाणु उसका अवरोधन करेंगे और स्वयं

संकुल होकर लहरें बनाना शुरू कर देंगे, जिससे हम को हवा लगने लगेगी। लेकिन यदि हम उसे अनुप्रस्थ स्थिति में यानी धरती की सतह के समतल रखकर चलायें (झलें) तो अवरोधन लगभग नहीं के बराबर होगा। इससे वायुगतिकी के विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि गत्ते को थोड़ा तिरछा रखकर झला जाये या हवा के बहाव के विरुद्ध थामकर रखा जाये तो उसके नीचे की ओर वायु के परमाणुओं का दाब बढ़ जायेगा और वे उसे हवा में उठाये रखेंगे यानी उसका उन्नयन होगा।
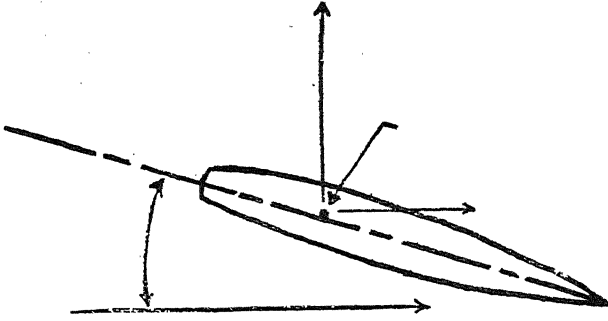
वायुयान के उत्तलपृष्ठ पंख का प्रहार कोण। बीच की टूटी हुई रेखा पंख की स्थिति की सूचक है। नीचे का तीर वायु-धारा के अनुप्रस्थ प्रवाह का। नीचे के तीर और टूटी रेखा के बीच किंचित् वक्र दोमुँहा तीर आघात कोण का दिग्दर्शन कर रहा है। ऊपर की ओर जो खड़ा तीर है वह पंख के उत्तलपृष्ठ की ओर के दाब का सूचक है। अन्तिम छोर की ओर मुँह किये हुए जो तीर है वह ऊपर की वायु-धारा के प्रवाह का संकेत करता है।

गत्ते, दफ्ती, पत्र, पंख, पर किसी भी वस्तु को इस तरह हवा की दिशा के विपरीत तिरछा करके रखने को वायुगतिकी और वैमानिकी-विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में प्रहार कोण या आघात कोण कहते हैं।

यही कारण है कि पक्षी अपने डैनों को थोड़ा तिरछा रख-

कर ही मँडरा सकता है। डैनों के तिरछे रहने से उसे उन्नयन के लिए आवश्यक प्रहार कोण मिल जाता है। खिचाव या आगे धकेले जाने (नोदन की क्रिया) के लिए वह अपने पंखों के विपुल संचालन से आवश्यक वेग पहले ही अर्जित किये रहता है। एक बार वेग का अर्जन हो जाने पर क्रिया और प्रतिक्रिया के सिद्धान्त के अनुसार हवा और पक्षी का शरीर नोदन की क्रिया को करते चले जाते हैं।

वायुगतिकी के ज्ञान की उपलब्धि और परीक्षण-प्रयोगों में मनुष्य को काफी समय लगा और अथक परिश्रम भी करना पड़ा। ऐसे परीक्षण के उपकरणों में वायुनाल, जिसे अंग्रेजी में 'विंड-टनेल' कहते हैं, का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वायुगतिकी के सिद्धान्तों का वायुयान पर परीक्षण करने के लिए पहली वायुनाल इंग्लैण्ड में १८७१ में बनाई गई थी। जिस नमूने, क्षेत्र अथवा पुर्जे पर हवा के प्रभाव की गणना करनी होती है उसे एक नाल में रखकर उस पर हवा छोड़ी जाती है। नमूनों पर हुए प्रभावों को पूरे वायुयान पर आरोपित करके समझा जाता है। आजकल इतनी बड़ी-बड़ी वायुनालों का निर्माण होने लगा है जिनमें वायुयान के पूरे-के-पूरे नमूनों को रखकर उस पर वायु के प्रभाव की जाँच कर ली जाती है।

वायुगतिकी के सिद्धान्तों को वायुयान बनाने और उड़ाने पर लागू करने को वैमानिकी कहा जाता है। वैमानिकी पर चर्चा करने से पहले एक बार वायु गतिकी की मुख्य बातों को दुहरा लेना लाभप्रद होगा।

१—हवा असंख्य परमाणुओं का संपुंजन है।

२—हवा के परमाणु अपने बीच संचरित पदार्थों का अवरोधन

करते और स्वयं संकुलित होते हैं। उनका संपीडन और विपीडन भी होता है।

३—हवा को पीछे धकेला जाये तो वह क्रिया-प्रतिक्रिया के सिद्धान्त के अनुसार पीछे धकेलनेवाली वस्तु को आगे खींचती है। इस क्रिया को अंग्रेज़ी में थ्रस्ट और हिन्दी में नोदन-क्रिया कहते हैं।

४—हवा के परमाणुओं की गति बढ़ने पर उनकी दाब-क्षमता घट जाती है, गति घटने पर दाब-क्षमता बढ़ जाती है।

५—हवा के मार्ग में तिरछी वस्तु अवरोधन उत्पन्न करती है और अवरोधन बिन्दु पर परमाणु दो धाराओं में विभक्त हो जाते हैं। एक धारा ऊपर की सतह के साथ और दूसरी नीचे की सतह के साथ प्रवाहित होने लगती है। अवरोधन करनेवाली वस्तु की ऊपरी सतह कुछ उठी हुई (उत्तल) रहने पर उसके साथ चलनेवाली धारा की गति बढ़ जाती है; इससे नीचेवाली धारा की गति स्वभावतः ही मन्द होगी। ये दोनों धाराएँ दाब उत्पन्न करती हैं, जिसे अंग्रेजी में लिफ्ट और हिन्दी में उन्नयन कहते हैं। नीचे की धारा संचरित वस्तु को अपनी कम गति के कारण एक तिहाई और ऊपर की धारा अपनी अधिक गति के कारण दो तिहाई उन्नयन प्रदान करती है।

६—ऊपर और नीचे की दोनों धाराओं से घिसटती और आगे की ओर बढ़ती हुई वस्तु अपने पीछे प्रचुर मात्रा में भँवर और विक्षोभ भी उत्पन्न करती जाती है। भँवर और विक्षोभ से जो आवेग उत्पन्न होता है उसे अवनयन कहते हैं। यह आवेग आगे बढ़ती हुई वस्तु को नीचे की ओर

खींचता है। इसी लिए इसे अवनयन कहते हैं। अंग्रेजी में इसे ड्रेग कहा जाता है।

वायुयान की उड़ान में धक्के और आगे की ओर खिचाव (थ्रुस्ट = प्रापेलशन = नोदन क्रिया), उन्नयन तथा अवनयन एवं प्रहार कोण का अत्यधिक महत्व रहता है। इन समस्याओं के समुचित समाधान के साथ ही साथ हवा में वायुयान के डोलन, आलोड़न, विलोड़न और नियन्त्रण तथा परिचालन की समस्याएँ भी हैं।

लेकिन सबसे मुख्य समस्या है अवनयन आवेग को घटाकर या दूर कर आवश्यक उन्नयन बनाये रखना; यानी प्रहार कोण को इस भाँति व्यवस्थित करना कि पंखे की दोनो सतहों पर दाब की मात्रा आवश्यक परिमाण में उपलब्ध रहे और पीछे की ओर भँवर तथा विक्षोभ उत्पन्न ही न हों।

६. वैमानिकी

जिन्होंने पहले-पहल हवा में उड़ सकनेवाली मशीनें बनाना आरम्भ किया था, उन्होंने वायुगतिकी के सभी मौलिक सिद्धान्तों को अपने द्वारा निर्मित मशीनों पर लागू करके देखा। या यों भी कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी मशीनों के साथ जो प्रयोग-परीक्षण किये उनसे वायुगतिकी के सिद्धान्त स्थिर और निश्चित हुए।

उनकी सबसे पहली समस्या थी अपनी मशीन के लिए आवश्यक उन्नयन प्राप्त करना। दूसरी समस्या थी अवनयन को दूर करना।

अनेक प्रयोगों और परीक्षणों से उन्होंने यह जान लिया था कि यदि किसी चौकोन-चपटी वस्तु को किनारे की ओर से हवा में चलाया जाये तो वह ऊर्ध्वाधर उन्नयन (लम्ब उन्नयन आवेग) प्राप्त कर सकती है। उन्होंने यह भी पाया कि यदि उस चपटी वस्तु की ऊपरली सतह कुछ वक्र यानी उत्तल-पृष्ठ हो और निचली सतह अवतल-पृष्ठ हो तो उन्नयन आवेग की अभीष्ट उपलब्धि हो सकती है। इसलिए उन्होंने अपने विमान-यंत्रों के पंख इसी आधार पर बनाये। आज हम प्रत्येक वायुयान में ऐसे ही पंख लगे पाते हैं जो ऊपर की ओर उत्तल-पृष्ठ और नीचे की ओर थोड़े-से अवतल-पृष्ठ होते हैं। लेकिन इस प्रकार

के सही पंख बनाने में प्रयोगकर्ताओं को अनेकों वर्ष लग गये। आधुनिक शक्ति-चालित वायुयान के आविष्कार का श्रेय राइट बन्धुओं को है। उन्होंने पहला शक्ति-चालित वायुयान १६०३ में उड़ाया था। अपने वायुयान के लिए उचित प्रकार के पंख बनाने की दिशा में उन्होंने हजारों प्रयोग किये और लगभग हजार प्रकार के पंख बनाये! उनसे पहले भी अनेक प्रयोग-कर्ताओं ने इस दिशा में अनेकानेक प्रयोग और परीक्षण किये।

जब उचित प्रकार का पंख बन गया तो मनुष्य ने 'हवा से भारी उड़ान' की दिशा में एक ज़बर्दस्त विजय प्राप्त कर ली।

दूसरी समस्या अवनयन को दूर करने के सम्बन्ध में थी। यदि अभीष्ट उन्नयन की उपलब्धि हो जाये तो अवनयन का आवेग बहुत कुछ कम हो जाता है, यानी अधिक मात्रा में उत्पन्न होने ही नहीं पाता है। लेकिन मशीन तो हवा में तभी उठ सकती थी जब अवनयन आवेग के प्रभाव से उसे मुक्त किया जा सके।

परीक्षणों और प्रयोगों के द्वारा यह जाना जा सका कि यदि मशीन हवा को अपनी ओर खींच सके और प्रतिक्रिया स्वरूप स्वयं हवा में आगे की ओर खिंचती या धकेली जाती रहे और उत्तल-पृष्ठ-अवतल-पृष्ठवाले पंखों से अभीष्ट उन्नयन का ताल-मेल बना रहे तो अवनयन आवेग से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

खिंचाव और धक्के की इस क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए नोदन का आविष्कार किया गया। यह क्रिया वायुयान की आगे की ओरवाली नोक पर, जिसे अंग्रेजी में वायुयान की नोज़ (नाक) कहते हैं, लगे हुए एक चालक-चक्र से होती है। चालक-चक्र

बिजली के पंखे-जैसा ही दो या चार पत्तियोंवाला पंखा होता है। हवा में इस चक्र का कार्य लकड़ी में कसे जानेवाले पेंच की तरह होता है। घुमाये जाने पर जिस तरह पेंच लकड़ी को
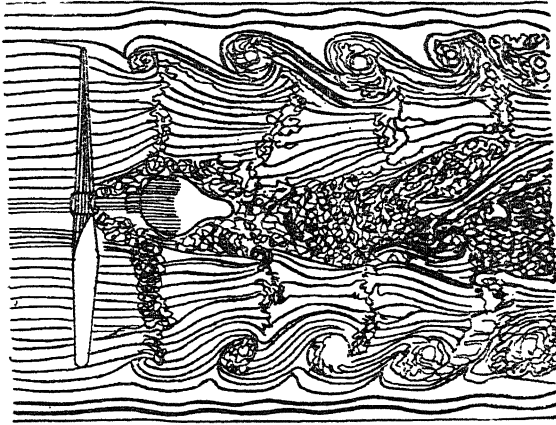
नोदन वायु में घूर्णायमान होता हुआ वायु को अपनी ओर खींचता है। यह खचाव वायु में पेंच की तरह चक्राकार होता है।

अपनी ओर खींचता और स्वयं उसमें खिचता जाता है उसी प्रकार यह चक्र भी हवा को अपनी ओर खींचता और स्वयं भी पूरी मशीन सहित हवा में खिचता चला जाता है। अपनी पेंच की-सी विशिष्टता के कारण अंग्रेजी में इसे 'एयर-स्क्रू' भी कहते हैं। वैसे वैमानिकी में इसका अंग्रेजी नाम 'प्रापेलर' और इसकी क्रिया का नाम 'प्रापेलशन' है। हिन्दी में हम इसे नोदक और इसकी क्रिया को नोदन-क्रिया कहते हैं।

इसी नोदन-क्रिया के द्वारा अवनयन-आवेग को दूर किया जाता है। नोदन को बहुत क्षिप्र वेग से चलाने की आवश्यकता है। आरम्भ में प्रयोगकर्ताओं ने हाथ से चलाये जानेवाले नोदक अपनी मशीनों में लगाये थे, लेकिन उन्हें उनके उपयोग में सफ-

लता नहीं मिली। जब विमानों में शक्ति-चालित यंत्र लग गये और वे नोदक को बहुत तेजी से घुमाने लगे तभी नोदक के उपयोग की सार्थकता हुई और उसी के बाद वायुयान हवा में उठ और उड़ सके।
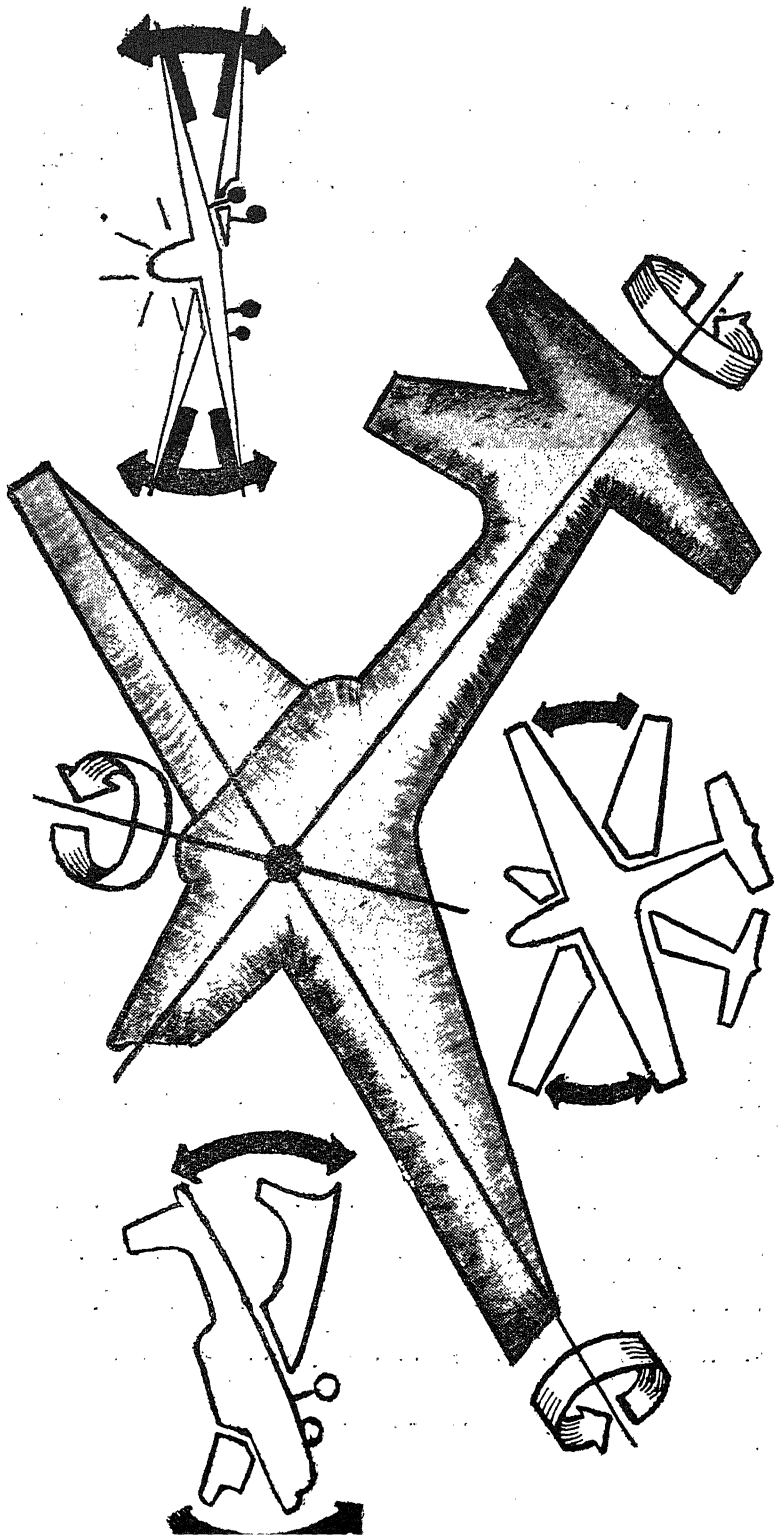
• जब वायुयान हवा में पहुँच गया तो उसे हवा में सन्तुलित और दोलायमान तथा आलोड़ित-विलोड़ित होने पर नियंत्रित रखने की समस्या सामने आई। ग्लाइडरों से किये गये प्रयोगों-परीक्षणों से इस सम्बन्ध में काफी ज्ञान मिला।

वायुमंडल में वायुयान का दोलन और आलोड़न-विलोड़न तीन तरह से होता है—(१) वह बच्चों के 'सी-सा' खेल की तरह उठता-गिरता है। कभी उसकी अगली नोक (या मुँह) नीचे हो जाती है और उसकी दुम या पीछे का हिस्सा ऊपर को उठ आता है। कभी इसके ठीक विपरीत दुम नीचे को और नोक ऊपर को उठ जाती है। अंग्रेजी में इसे 'पिचिंग मुवमेंट' कहते हैं।

(२) वह दाएँ-बाएँ झुकता है अथवा डोलता-लुढ़कता है जिस तरह नाव या जहाज कभी-कभी पानी में डोलने लगते हैं। कभी उसका बाईं ओर का पंख ऊपर उठ जाता है और दाहिना नीचे और कभी दाहिना ऊपर उठ जाता है और बायाँ नीचे! यह लगभग डगमगाने की तरह है। अंग्रेजी में इसे 'रालिंग' या 'बैंकिंग मुवमेंट' कहते हैं।

(३) वह दाएँ-बाएँ घूमने लगता है। कभी उसका सिरा (नोक) दाहिनी ओर तो कभी बाईं ओर को हो जाता है। इसे अंग्रेज़ी में 'यानिंग' या 'टर्निंग मुवमेंट' कहते हैं।

देखिए सामने पृष्ठ ७२ पर बना चित्र।

ग्लाइडर भी हवा में इसी तरह दोलायमान होते हैं। पहले-पहल ग्लाइडरों का नियन्त्रण करने के साधनों का आविष्कार नहीं हुआ था। ग्लाइडर से परीक्षण करनेवाले लोग परों से लटके रहते थे और अपने शरीर को हिला-डुलाकर उनका नियंत्रण करने की कोशिश करते थे। जब देखते कि अब नियंत्रण किया नहीं जा सकता तो कूद पड़ते थे। कई इसी तरह मर जाते थे। कितने मर गये इसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन आज कल ग्लाडइरों में इन तीनों प्रकार के दोलनों का नियन्त्रण करने के यांत्रिक उपकरण लगे रहते हैं। और ऐसे ही उपकरण प्रत्येक वायुयान में भी लगे रहते है।

वायुयान में नियन्त्रण के उपकरण उसके पंखों और पिछले वाले लम्बे हिस्से में, जिसे उसका 'पृच्छ भाग' (दुमवाला हिस्सा) कहा जाता है, लगाये जाते हैं और उन्हीं से उसे काबू में रखा जाता है।

नियन्त्रण के उपकरण लगाने से पहले वायुयान का सन्तुलन बिन्दु अथवा गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र मालूम करना पड़ता है। यदि कोई लम्बी वस्तु दोनो ओर बराबर वजन की हो और उसे किसी कीली पर साधा जाये तो वह सहसा गिरेगी नहीं, दोनो ओर समान भार के कारण कीली पर सधी रहेगी। तराजू का काँटा भी इसी तरह होता है। वायुयान के सन्तुलन के लिए भी आवश्यक है कि उसका सन्तुलन बिन्दु (या काँटा) मालूम कर लिया जाये। वायुयान के निर्माण में उसके सन्तुलन बिन्दु के निर्धारण का बड़ा भारी महत्त्व होता है। यह बिन्दु जरा-सा भी चूक जाये तो वायुयान उड़ेगा ही नहीं और यदि उड़ गया तो भयंकर रूप से दुर्घटनाग्रस्त हो जायेगा।

नियन्त्रण उपकरणों के द्वारा ही वायुयान का आरोहण और अवरोहण किया जाता है। ये महत्वपूर्ण उपकरण तीन हैं।

पंखों में जो उपकरण लगाये जाते हैं उन्हें अंग्रेजी में 'एलरोन' कहते हैं 'एलरोन' के उपकरणों को विकसित करने का श्रेय जैसा कि हम बता आये हैं, कुर्टिस को है। हिन्दी में हम उन्हें लोलक कहेंगे। ये लोलक कब्जेदार होते हैं। दोनों पखों के सिरे पर पीछे की ओर उन्हें लगाया जाता है।

वायुयान की पूँछ या दुम में ऊपर की ओर को उठा हुआ एक अंश होता है, जिसे 'फिन' (मीन-पक्ष) कहते हैं। यह स्थिर होता है। फिन के नीचे दोनों ओर को निकला हुआ भाग स्थिर पृच्छतल या स्थिरक (अंग्रेजी में स्टेबिलाइज़र) कहलाता है। दोनो स्थिरकों से जुड़े हुए दो हिलाये जा सकनेवाले तल होते हैं, जिन्हें उच्चालित्र (अंग्रेज़ी में एलिवेटर) कहते हैं। फिन से जो उपकरण जोड़ा जाता है उसे सुकान (अंग्रेज़ी में रडर) कहते हैं।

लोलक ऊपर नीचे को चलते हैं। ये वायुयान का दायें-बायें दोलन करते हैं। यह इस तरह नियोजित रहते हैं कि जब एक पंख का लोलक नीचे किया जाता है तो दूसरे पंखवाला ऊपर हो जाता है (उठ जाता है) और जब एक उठाया जाता है तो दूसरा नीचे हो जाता है। इनसे वायुयान का 'रोलिंग' होता है और रोलिंग का नियन्त्रण भी किया जाता है।

सुकान दाहिने-बायें चलता है। उसका प्रयोजन वायुयान की नोक (सिरे) को दायें-बायें घुमाना है। सुकान से वायुयान का 'यानिंग' होता है और 'यानिंग' का नियन्त्रण भी।

उच्चालित्र लोलकों की भाँति ऊपर-नीचे को चलते हैं और वायुयान की नोक (सिरे) को ऊँचा उठाने और नीचे झुकाने का

काम करते हें। 'पिचिंग' का नियन्त्रण करने के साथ-साथ उच्चा-लित्रों की सहायता से ही वायुयान का आरोहण और अवरोहण किया जाता है। उच्चालित्रों को ऊपर करने से वायुयान की नोक उठ जाती है, दुम झुक जाती है और उसे आरोहण में सहायता मिलती है; नीचे कर देने से नोक झुक जाती है, दुम उठ जाती है और उसे अवरोहण में सहायता मिलती है।

वायुयान को बाईं ओर मोड़ने के लिए सुकान को बाईं ओर करके दाहिने पंखवाले लोलक को नीचा और बाएँ पंखवाले लोलक को ऊँचा कर देते हैं, इससे दाहिने पंख का उन्नयन बढ़ जाता है, वह बायें की अपेक्षा कुछ ऊपर भी उठ जाता है और वायुयान को बाईं ओर मुड़ने में सरलता होती है। यदि केवल सुकान से वायुयान को मोड़ने का प्रयत्न किया जाये तो बड़ी कठिनाई पड़ती और जोर का दोलन होता और धक्के लगते हैं।

वायुयान को जमीन पर से उड़ाने के लिए पहले उसे जमीन पर ही एक निर्धारित गति तक दौड़ाना होती है। चालक अपने स्थान पर बैठकर मोटर चालू कर देता है, नोदक चल पड़ते हैं और वायुयान दौड़ने लगता है। जब उसका वायुवेग (पृथ्वी पर दौड़ने की गति नहीं) प्रति घण्टा २० मील हो जाता है तो उच्चालित्रों को उठा दिया जाता है। उनके उठाये जाते ही नोक भी उठ जाती है, दुम झुक जाती है और वायुयान का आरोहण आरम्भ हो जाता है, यानी वह उड़ने लगता है। जब तक उसका वायुवेग ४० मील प्रति घण्टा नहीं हो जाता, वह उड़ नहीं सकता।

उच्चालित्रों को ऊपर उठाये ही वायुयान को लगभग एक हजार फुट की ऊँचाई तक चढ़ा ले जाते हैं, उसका वायुवेग भी

निरन्तर बढ़ता जाता है। एक हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँचने के बाद उच्चालित्रों को उनके स्वाभाविक रूप में कर दिया जाता है अब वायुयान अनुप्रस्थ स्थिति में आ जाता है और सीधा-सीधा उड़ता रहता है।

वायुयान को ऊँचाई से नीचे उतारने और जमीन पर लाने के लिए आवश्यक है कि उसके अवनयन को बढ़ाया जाय। हम पढ़ आये हैं कि पंखों के प्रहार कोण को बढ़ाकर उन्नयन कम और अवनयन अधिक किया जा सकता है। अवरोहण के लिए पंखों का प्रहार कोण बढ़ा दिया जाता है, जिससे उनके उत्तल-पृष्ठ पर होकर बहती हुई हवा अपने पीछे अत्यधिक विक्षोभ और भँवर उत्पन्न करती है। इसमें दो-तिहाई उन्नयन प्रदेश विच्छिन्न होने लगता है। परिणामस्वरूप अवनयन बढ़ता जाता है। लेकिन यदि अवनयन एकदम बढ़ जाये तो वायुयान तेजी से नोक के बल नीचे को गिरने लगता है। ऐसा उस समय भी होता है जब वायुवेग ४० मील प्रति घंटे से कम हो जाता है। इस गति से कम पर तो वायुयान उड़ता हुआ रह ही नहीं सकता। ऊँचाई पर रहते हुए भी यदि गति ४० मील से कम हो जाये तो वायुयान एकदम नोक के बल गिरने लगता है, चाहे उसका प्रहार कोण ठीक ही क्यों न रहा हो। इस लिए इस काम को बहुत धीमे-धीमे और क्रमशः किया जाता है। इञ्जिन को बन्द कर दिया जाता है और धीरे-धीरे वायुयान को नीचे लाते रहते हैं, धीरे-धीरे उसकी वायुगति को घटाते-घटाते प्रतिघण्टा ४० मील तक ले आते हैं। उच्चालित्रों को भी नीचे झुका दिया जाता है। उन्नयन बहुत धीरे-धीरे कम होता और अवनयन बढ़ता जाता है और अन्त में वायुयान अपने पहियों के द्वारा जमीन पर दौड़ने लगता है।

जब वह जमीन पर उतरकर खड़ा हो जाता है तो उच्चालित्र स्वाभाविक रूप में कर दिये जाते हैं।

इस तरह हवाई जहाज जमीन से उड़ता और जमीन पर उतरता है।

ऊपर के सारे वर्णन से एक बात बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आती है। वह है वायुयान के पंखों का प्रहार कोण। वायुयान के पिण्ड से पंखों को लगाते समय इस बात का मुख्य रूप से विचार किया जाता है कि औसत या अधिकतम वायु-गति से सीधी उड़ान उड़ने के समय प्रहार कोण कितना रखा जाये कि उत्तल-पृष्ठ से हवा की धारा बहकर निकले तो अपने पीछे भँवर और विक्षोभ जरा भी न होने दे। इसलिए विभिन्न भार और विभिन्न गतिवाले विमानों के पंखों का प्रहार कोण तो भिन्न-भिन्न होता ही है उनके पृष्ठों का उत्तलन (और अव-तलन) भी भिन्न-भिन्न होता है।

हवाई जहाज को चलाने और उड़ाने का सारा काम नोदन या प्रापेलर करता है। इस नोदन को अन्तर्दहन इंजिन चलाता है। यह इंजिन पेट्रोल से चलता है। पेट्रोल से चलनेवाले इंजिन में पेट्रोल और वायु घुल-मिलकर एक बेलन (सिलिंडर) में संपीडित होते हैं और चिनगारी के द्वारा विस्फोट होकर पिस्टन ढकेला जाता है। पिस्टन एक आधार के द्वारा धुरा या दण्ड से संयुक्त होता है और ढकेले जाने की क्रिया में दण्ड को घूर्णायमान करता है। वायुयान का नोदक इसी दण्ड से जुड़ा रहता और चालित होता है।

सबसे पहले १८४२ में फिलिप्स ने, उसी वर्ष हेन्सन ने और १८४८ में स्ट्रांगफेलो ने शक्तिचालित इंजिन का उपयोग

अपने नमूनों के लिए किया था । उनके इंजिन भाप की शक्ति से चलते थे । ये इंजिन बहुत भारी होते थे । १८९४ में मैक्सिम ने दो सिलिंडरोंवाला मिश्र इंजिन बनाया था । पेट्रोल से चलने-वाला इंजिन सबसे पहले लेंगले ने १९०३ में बनाया । उसी वर्ष राइट बन्धुओं ने अपने वायुवान में भाप का इंजिन लगाकर पहली उड़ान भरी । १९०८ में जब वे फ्रान्स में उड़े तो उनके वायुयान में चार सिलिंडर का २४ अश्व-शक्तिवाला पेट्रोल इंजिन लगा था, जिसका दंड प्रति मिनट १२०० बार घूर्णित होता था और लकड़ी के दो नोदकों को प्रति मिनट ४५० बार घूर्णित करता था ।

आजकल तो वायुयान में बहुत ही उन्नत कोटि के इंजिनों का प्रयोग किया जाता है । इनमें कुछ के सिलिंडर मोटर के इंजिनों की तरह एक दूसरे के पीछे सीध में होते हैं और इन्हें पानी या किसी तरल पदार्थ से ठण्डा करने की आवश्यकता होती है । कुछ इंजिनों के सिलिंडर दण्ड के चारों ओर गोलाकार में बने होते हैं । ये हवा से ठंडे होते रहते हैं । घूर्णित सिलिंडरों-वाले इंजिन भी बनाये गये हैं ।

वायुयान का इंजिन बहुत हलका और कम ईंधन में अधिक अश्व-शक्ति उत्पन्न करने की सामर्थ्यवाला होना चाहिए । आज-कल छोटा-से-छोटा वायुयान इंजिन ५० अश्व-शक्ति उत्पन्न करता है और बड़ा-से-बड़ा ३५०० अश्व-शक्ति से भी अधिक । इनके हलकेपन का अन्दाज इसी से लग जायेगा कि जहाँ मोटर के इंजिन का वजन प्रति अश्व-शक्ति के लिए ३० पौंड से भी अधिक होता है वहीं वायुयान के इंजिन का वजन प्रति अश्व-शक्ति के लिए १ पौंड से भी कम । और ईंधन तो उनमें प्रति अश्व-शक्ति के लिए

प्रति घंटा ०·४५ पौंड ही जलता है। इंजिनों को हलका और सक्षम बनाने के लिए उनके निर्माण में मैग्नेशियम और एल्यू-मिनियम के मिश्रणों का उपयोग किया जाता है।

लेकिन बहुत ऊँचाई पर पिस्टनवाले पेट्रोल इंजिन सक्षम ढंग से कार्य नहीं कर पाते। वहाँ नोदक बेकार हो जाते हैं। इसलिए जेट इंजिनों का आविष्कार किया गया। ये इंजिन न्यूटन के 'प्रत्येक क्रिया की समान और विपरीत प्रतिक्रिया' के सिद्धान्त पर बनाये गये। इन्हें प्रतिक्रिया-इंजिन भी कहते हैं और ये कई प्रकार के हैं। जेट सिद्धान्तों पर चलनेवाले इञ्जिन का सबसे पहला माडल लगभग २००० वर्ष पूर्व सिकन्दरिया के एक वैज्ञानिक-दार्शनिक हेरो ने बनाया था। सभी प्रकार के जेट इञ्जिन बिना नोदक की सहायता के ही हवा को पीछे धकेलते रहते हैं। इन्हें दो कोटियों में बाँटा जा सकता है: एक 'वायु-प्रवाह-प्रतिक्रिया' इञ्जिन और दूसरे 'रासायनिक-ईंधन-प्रति-क्रिया' इञ्जिन।

वायु-प्रवाह-प्रतिक्रिया इञ्जिनों में जेट, रैम-जेट, टर्बो-जेट आदि कई किस्में हैं। हमेशा प्रत्येक जेट इञ्जिन के सामने की ओर एक खुला छेद या मुँह होता है। संचलन में इस मुँह से हवा अन्दर घुसती है और एक घूर्णायमान संपीडक चक्र (पंखा) उसे दहन-कक्ष में संपीडित करता रहता है। यहीं ईंधन आ मिलता है और दहन-क्रिया होती है। दहन के परि-णामस्वरूप हवा गरम होकर फैलती है। संपीडन बाधा के कारण वह सामने की ओर तो निकल नहीं सकती, इसलिए बड़े जोर के साथ पीछेवाली नली से बाहर भागती है। और उसके बाहर भागने का यह धक्का ही हवा को पीछे ठेलता और

वायुयान को आगे खींचता रहता है। रैम-जेट में संपीडन के लिए चक्र नहीं होता, स्वयं उसकी गति इतनी तेज होती है कि हवा का संपीडन स्वयमेव होता रहता है। लेकिन वायुयान को इतनी तेज गति देने के लिए पहले रैम-जेट को किसी दूसरी मशीन से उड़ाना पड़ता है। टर्बो-जेट को टर्बो-प्राप भी कहते हैं, क्योंक इसमें प्रापेलर (नोदक) भा होता है और वायु का निष्कासन भी। लेकिन यह इञ्जिन बहुत वजनी होता है।

हैंडले पेज विक्टर नामक जेट उड़ता हुआ

परन्तु जैट इंजिनों की उपयोगिता वहीं तक है जब तक हवा मिलती रहे। उसके बाद राकेट या प्रक्षेपण से काम लिया जाता है। ये प्रक्षेपण अपने ईंधन के ही साथ हवा लेकर चलते हैं, वायुमंडल की हवा पर निर्भर नहीं करते। इनके ईंधन के ही माथ आक्सीजन मिला दी जाती है। ये बारूद के पटाखे के सिद्धान्त पर काम करते हैं। बारूद वास्तव में आक्सीजन और ज्वलनशील पदार्थ का एक योग है। राकेट में बारूद नहीं भरी जाती। उसमें पेट्रोल की टंकी होती है और एक टंकी
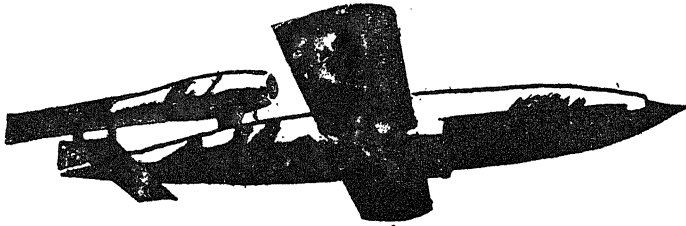
दूसरे महायुद्ध में प्रयुक्त जर्मनी का उड़न बम

में तरल आक्सीजन भरी रहती है। राकेटवाले वायुयानों में ईंधन बहुत तेजी से जलता है और वे बहुत तेजी से, ध्वनि की गति से
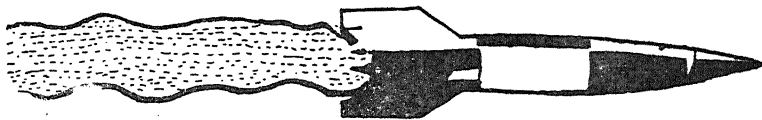
दूसरे महायुद्ध में प्रयुक्त जर्मनी का राकेट बम

भी तेज, उड़ सकते हैं। ऐसे वायुयानों को 'सुपरसोनिक' विमान कहते हैं। हिन्दी में इन्हें 'अतिस्वनिक' विमान कहेंगे। ऐसे विमानों की नोक सुई-जैसी और पंख पीछे को सिमटे हुए बनाये जाते हैं। ऐसी बनावट के कारण ही ये विमान ध्वनि बाधा को पार कर सकते हैं। जब विमान ध्वनि की गति से धीमे चलता है तो उससे बननेवाली ध्वनि तरंगें आगे-आगे चलती हैं, लेकिन जब ध्वनि की गति के बराबर चलता है तो ध्वनि-तरंगें साथ-साथ चलती हैं। ध्वनि-तरंगों से आगे या साथ चलने से वायुयान के पिंड और पंखों के आगे ऊँचे दाबवाली हवा की बाधा खड़ी हो
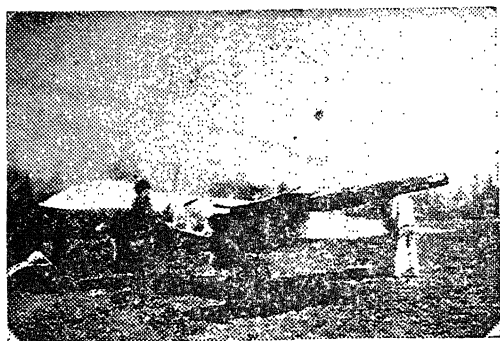
ब्लेरिआट बर्ड नामक वायुयान अपने हवाई अड्डे पर

जाती है। इस बाधा को अतिस्वनिक विमान अपनी विशिष्ट बनावट के द्वारा ही भेदकर निकल सकता है।

जेट और सुपरसोनिक वायुयानों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के वायुयान हैं। वायुयानों में भेद मुख्यतः उनकी बनावट और उपयोगिता को दृष्टि में रखकर किया जाता है। यात्रियों को ढोनेवाले और बम बरसानेवाले वायुयानों में नाम और काम का ही नहीं, बनावट, ईंधन जलाने की शक्ति, गति, पंखों के रूप-रंग और प्रहार कोण का अन्तर भी होता है। वायुयानों के पिंडों के आकार-प्रकार, सन्तुलन बिन्दु, पृच्छभाग की बनावट आदि में भी उपयोगिता आदि की दृष्टि से बड़ा अन्तर होता है। जेट वायुयानों की बनावट नोदकवाले वायुयानों से सर्वथा भिन्न होती है। कुछ वायुयान केवल धरती पर ही उतर सकते हैं। इनके नीचे पहिये लगे रहते हैं। कुछ वायुयान केवल पानी पर ही उतर सकते हैं। इनके नीचे ढोल-जैसा आकार बना होता है, जिससे ये पानी पर तैरते रह सकें। पानी पर उतरनेवाले वायुयानों को समुद्री वायुयान कहते हैं। कुछ वायुयान एक साथ पानी और धरती दोनो ही पर उतर सकते हैं। इनमें पहिये और ढोल दोनो लगे होते हैं।

और, कुछ वायुयान ऐसे भी होते हैं जो मकानों की छतों पर एकदम सीधे उतर और वहीं से एकदम सीधे चढ़ (उड़) भी जाते हैं। इन्हें हेलीकाप्टर कहते हैं। अन्य सभी प्रकार के हवाई जहाजों को आरोहण-अवरोहण के लिए काफी लम्बी दौड़ लगानी पड़ती है। उड़ने-उतरने के लिए लम्बे मैदान की जरूरत होती है। लेकिन हेलीकाप्टर बिना दौड़ लगाये ही एकदम सीधा-सीधा ऊर्ध्वाधर उड़ने लगता है। इस प्रकार के वायुयान के दोनो ओर पंख नहीं बने होते और न सामने या नोक की ओर नोदक ही होता है। ऊपर की ओर सिर पर स्थिर पंख होते

हैं और उन्हीं के साथ एक या दो घूर्णायमान (घूमनेवाले) पंख भी होते हैं। इन घूर्णायमान पंखों को घूर्णक (अंग्रेजी में रोटर) कहते हैं। घूर्णक एक भी हो सकता है और दो या तीन भी। असल में इस वायुयानों में पंख और नोदक एक साथ तले-ऊपर
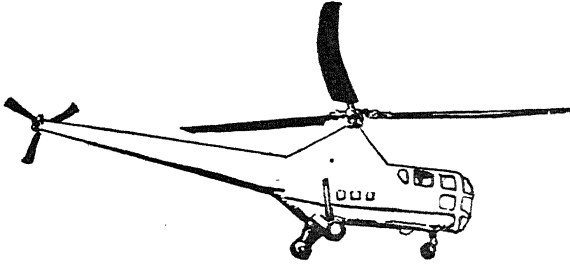
हेलीकाप्टर

बने होते हैं। घूर्णक वही काम करता है जो नोदक करता है। इसका अनुप्रस्थ (क्षैतिज) घूर्णन हवा को नीचे खींचता और क्रिया-प्रतिक्रिया के सिद्धान्तानुसार यान को ऊपर ढकेलता है। घूर्णक या घूर्णकों को थोड़ा-सा तिरछा करके हेलीकाप्टर को आगे, बाजू में या पीछे भी चलाया जा सकता है। संकट-ग्रस्तों को बचाने में हेलीकाप्टर की बड़ी उपयोगिता है। अभी क्षिप्रगामी हेलीकाप्टरों का निर्माण सम्भव नहीं हुआ है, लेकिन वह दिन दूर नहीं है जब क्षिप्रगामी हेलीकाप्टर भी बनाये जाने लगेंगे।

हेलीकाप्टर का आविष्कार १९०७ में पाल कोरनू एवं लुई और जेकस ब्रेगेट ने एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में किया था। यद्यपि कोरनू पहले उड़ा, पर वह उर्ध्वाधर न उड़ सका इसलिए उर्ध्वाधर उड़ने का पहला श्रेय ब्रेगेट बन्धुओं को ही है।

८. वैमानिकी के बारे में कुछ और

यदि विमान-चालक को उड़ते समय वायुमंडल में प्रतिक्षण हो रहे परिवर्तनों की क्षण-क्षण की जानकारी न रहे तो उसकी जान मुसीबत में फँस जाये। उड़ते हुए वायुयान के अपने कक्ष में बैठा वह वायु की गति, प्रवाह की दिशा और स्वरूप, धरती से ऊँचाई, वायुमंडलीय दाब के भार आदि किसी का पता नहीं पा सकता। उसे इन सब बातों का क्षण-क्षण का पता देते रहने के लिए वायुयान में विविध प्रकार के यांत्रिक साधन होते हैं। कहाँ कौन-से बादल हैं, उनका रुख किस ओर है, किन बादलों मे कैसी हवा चलेगी, कहाँ हवा कितनी ठंडी है या कब कितनी ठंडी या गरम हो जायेगी, वायुयान धरती से कितना ऊँचा उड़ रहा है और नीचे समुद्र, धरती अथवा पहाड़ कितने फासले पर हैं, कहीं निर्धारित मार्ग से भटकाव तो नहीं है और यदि है तो कितना, किस कोण में, वायु की गति प्रति घंटा कितने मील है, वायुयान किस गति से चल रहा है, वह कितना डगमगाया या दोलायमान हुआ है, वायु में कितनी नमी है, कब बर्फ जम जा सकती है, आरोहण की गति कितनी है, अवरोहण किस गति से हो रहा है—आदि सभी बातों की जानकारी कराते रहनेवाले यन्त्र चालक के ठीक सामने ही लगे रहते हैं।

वायुगति-दर्शक यन्त्र वायु की ठीक-ठीक गति बताता रहता

है। क्षितिजक यन्त्र डगमगाने, दोलायमान होने और 'चील-झपट्टे' का सही-सही संकेत देता है। दिशा-दर्शक से पता चलता रहता है कि निर्धारित मार्ग से भटके तो नहीं और यदि भटके तो किस दिशा और किस कोण में और कितना ? रेडियो अल्टीमीटर समुद्र-तल से ऊँचाई के साथ ही साथ नीचे पहाड़ों आदि की दूरी बताता है, जिसमें कुहरा रहने पर भी टकराने से बचा जा सकता है। आरोहण-गति-दर्शक ऊपर चढ़ने की गति सूचित करता है। चुम्बकीय कम्पास और रेडियो सेट भी
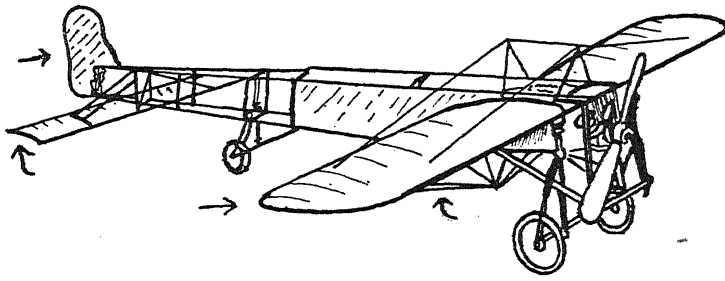
ब्लेरिआट का एक आदमी के बैठने योग्य वायुयान, जिसे उसने १९०९ में बनाया था। इसी प्रकार के वायुयान में बैठकर उसने इंग्लिश चैनल को पार किया था।

रहता है। वायु अड्डे से मौसमों के संकेत, अड्डे से दूरी, उतरने का ठीक समय, दूसरे वायुयान से निकटता या दूरी के संकेत मिलते रहते हैं। अब तो संकेतों के लिए राडार का उपयोग भी किया जाने लगा है। रेडियो की सहायता से बिना चालक के वायुयान उड़ाये भी जाने लगे हैं, यद्यपि यह अभी परीक्षण की ही स्थिति में है। ईंधन का परिमाण दिखानेवाला यन्त्र तो होना ही चाहिए। सुकान, लोलक और उच्चालित्रों को भी अब तो यन्त्रों से ही चलाया जाता है।

हवा और मौसमों के ज्ञान के अतिरिक्त यह ज्ञान भी आवश्यक है कि वायु मंडल में ऊपर जाने पर मानव-शरीर पर क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं। समुद्री धरातल पर मानव शरीर को ५०० से ८०० डिग्री फारनहाइट के तापमान के बीच, वाष्प और वायु-लहर अनुकूल रहने पर कोई कष्ट नहीं होता। पर ऊँचा जाने पर तापमान और दाब दोनो ही कम होते जाते हैं। तापमान को अनुकूल करने के लिए विद्युत् से तपाये हुए वस्त्रों का प्रयोग करना होता है। १०,००० फुट की ऊँचाई पर आदमी ठीक से साँस नहीं ले सकता। २०,००० फुट की ऊँचाई तक पहुँचते-पहुँचते वह न ठीक से देख सकता है, न सुन सकता है, न उसकी मांसपेशियाँ बराबर कार्य कर सकती हैं; हो सकता है कि वह बेसुध ही हो जाये। इस समय आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है, जिसका प्रबन्ध पहले से किया रहता है। आजकल तो आक्सीजन भरे ऐसे कवच बनने लगे हैं, जिन्हें पहिनकर आदमी ८०,००० फुट की ऊँचाई तक मजे में उड़ता चला जाता है। आरोहण-अवरोहण के समय कान के अन्दर विचित्र-सा अनुभव होता है। उसे थूक घुटककर दूर किया जा सकता है। रात में अधिकतर उड़ान करनेवालों को विटामिन 'ए' अधिक खानी पड़ती है। यदि आराहेण की गति प्रति मिनट १००० फुट हो तो पेट फूलने लगता है। बहुत ऊँचाई पर आक्सीजन की नकाब लगाने पर भी ऐसा ही होता है। लेकिन जो वायुयान १०,००० फुट से नीचे उड़ते हैं उनके यात्रियों को कोई विशेष असुविधा या कष्ट नहीं होते। फिर भी ध्वनि-नियन्त्रित कमरे, आरामदेह कुर्सियाँ, सेफ्टी बेल्ट तो प्रायः सभी वायुयानों में उपलब्ध हैं।

वायुयान के निर्माण में पंखों के उचित प्रहार कोण के

निर्धारण के साथ ही इस बात का भी ख्याल रखा जाता है कि उसका कुल वजन कम हो, वह ज्यादा बोझ उठाने की सामर्थ्य रखता हो, ईंधन कम खर्च करता हो, मशीनरी शीघ्र खराब न हो जाये, वेग अच्छा हो आदि-आदि। इसी लिए वायुयान हलकी और अधिक तन्यबलवाली धातुओं से निर्मित किये जाते हैं। उनका पिंड स्ट्रीमलइण्ड यानी पतला, लम्बोतरा और अंडाकार होता है।

एक यात्री वायुयान की बनावट में उसके वजन का मोटा-मोटी अन्दाज कुछ इस प्रकार रखा जाता है—
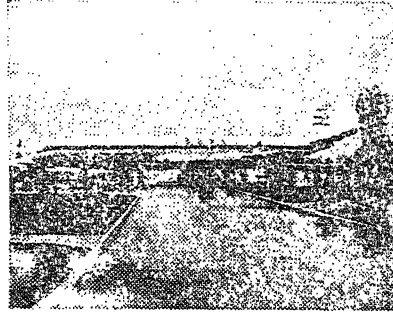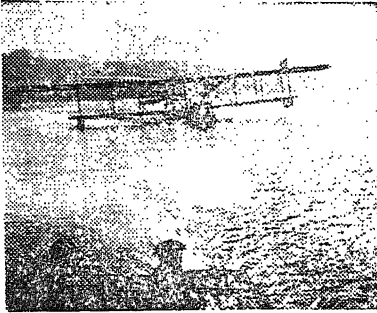
शार्ट बधुओं का समुद्री वा यान

लन्दन के हवाई अड्डे पर कॉमेट—३

पंखों का वजन ११ प्रतिशत, पिंड १३ प्रतिशत, नीचे का भाग ५ प्रतिशत, पेट्रोल १६ प्रतिशत, स्निग्ध तेल १५ प्रतिशत, टंकी २·५ प्रतिशत, चालक-परिचारक एवं उनके उपकरण ६ प्रतिशत, यात्री, उनका सामान और बोझा २० प्रतिशत, फुटकर ३ प्रतिशत।

वायुयान का प्रचलन दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। शीघ्र-गामिता इसके प्रचार का मुख्य कारण है। युद्ध के संहारक कार्यों में इसके दुरुपयोग ने इसके आविष्कार को मानव-जाति के लिए विभीषिका का रूप दे दिया है। परन्तु साथ ही शान्तिकालीन

कार्यों में इसका उपयोग वरदान भी है। उड़ान में इसका शोर दुःखद अवश्य है। आयेदिन की दुर्घटनाओं में प्राण-हानि निश्चय ही खेदजनक है। लेकिन आविष्कारक शोर को कम करने के साथ-ही-साथ दुर्घटनाओं की सम्भावनाओं को भी कम करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। अभी तक वायुयान की यात्रा सामान्य-जन की पहुँच से परे है, लेकिन जो व्यय कर सकते हैं उनके लिए कुछ बहुत महँगी भी नहीं है। केवल रेल के पहले दर्जे के किराये में उतनी ही दूर तक, लेकिन उससे बहुत ही कम समय में, वायुयान से यात्रा की जा सकती है।

आज तो दुनिया के प्रत्येक देश में उस देश की अपनी वायु-सेवाएँ और उनका परिचालन-संचालन करनेवाली अपनी कम्प-नियाँ हैं, जो यात्रियों और सामान को शीघ्रता से पहुँचाने के साथ ही शान्तिकालीन उद्योगों के विकास और वृद्धि में लगी हुई मानव-ज़ाति की मूल्यवान सेवा कर रही हैं।

और अब तो अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए भी राकेट चलित विमानों से परीक्षण किया जा रहा है। २५,००० मील प्रति घंटा और इससे भी तेज गति से चलनेवाले राकेट बनाकर, अभी सौ ही वर्ष पूर्व पक्षियों के-से पंख शरीर से बाँधकर उड़ने का प्रयत्न करने वाला मनुष्य चन्द्रमा में झंडे और प्रक्षेपण भेजने में सफल हो गया है और वह दिन दूर नहीं जब वह स्वयं ग्रहों-उपग्रहों की सैर करने लगेगा। लेकिन इस सम्बन्ध में जो प्रगति हुई है वह तो अलग ही एक पूरी पुस्तक का विषय है।

★